अंत्य युग का अमर सन्देश

मेरा एक पैर गाड़ी में था और दूसरा प्लेटफ़ार्म पर—हृदय पश्चिम की ओर देख रहा था, जहाँ से सत्य-सूर्य तमतमाता हुआ निकला है—लगभग उसी समय 'सतसई' की कच्ची अजिल्द प्रति मुझे लेखक के स्नेह-पत्र सहित मिली।

चलती गाड़ी में मैंने करुण जी का पत्र और उनकी पुस्तक पढ़ी। करुण जी के साथ मैंने कई बार घंटों बातचीत की है, और यह अनुभव किया है, कि वे एक असाधारण व्यक्ति हैं—एक विचित्र शक्ति हैं। आज तो मैं यह अनुभव कर रहा हूँ, कि भविष्य भारत का इतिहास लेखक उनकी गणना नए उज्ज्वल युग के निर्माण-कर्ता कवियों में करेगा।

उन्होंने अपनी सतसई के सम्बन्ध में अपने पत्र में ला जवाब सादगी के साथ लिखा है—

> "सुपद सुगीत न 'दोहरे' नहिं 'नावक के तीर,'
> करुन-कराहन के कढ़े, कछु संताप गँभीर!"

सच तो यह है कि यही सच्ची कविता है—यह जनता के उन गम्भीर घावों का खून के आँसू बहा-बहाकर रोना है, जिनको पूँजीपतियों के अत्याचारों के तीर बार-बार चोटें लगाकर भरने नहीं देते! "चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय।" उसने आँसुओं में लथ-पथ पुस्तक लिखी—और सब को पीड़ित संसार की दयनीय दुर्दशा पर आँसू बहाने का परामर्श दिया। बिहारी ने शृङ्गार की सेज

सजा कर, उस पर सुन्दर लड़की को नंगा लिटाकर, दोहों की ज़बान में लोगों से कहा, आओ देखो ! प्वाइंटर फेर-फेरकर अंग—प्रत्यंग दिखाया—उद्रेक पैदा करने वाली समालोचना सहित। इन दिनों में भी लोगों ने विविध विषयों पर दोहे लिखे। सब फ़िज़ूल—

"थोथे पोथे काव्य के रचि रचि धरे अनेक !
श्रमकारिन के लाभ की बात न बरनी एक !!"

जब तक बुभुक्षा की ज्वाला चिता की ज्वाला की तरह दानव-गति से जीवन के सौन्दर्य का विनाश कर रही है, तब तक संसार में सुख और शान्ति का स्थापित होना असम्भव है:—

"बटमारी चोरी ठगी दुख दारिद संताप,
रोटी को निहचै भये गये लखहिं सब आप !"

"सौ बातन की बात इक बादि करै को तूल;
है इक रोटी-प्रश्न ही सब प्रश्नन कौ मूल !"

करुण जी ने, सब प्रश्नों के बाबा इसी रोटी-प्रश्न को, जो हमारी उन्नति में निरन्तर बाधक है, ठिकाने लगाने के लिये लोगों को अपनी ओज भरी वाणी से उकसाया है। संसार के एक दूर के कोने जिस सर्व सुखकारी समान अधिकार प्रदायिनी, न्याय-व्यवस्था का सूत्रपात हुआ है, करुण जी चाहते हैं कि उसी व्यवस्था की प्रतिष्ठा भारतवर्ष में भी हो। किसानों और मज़दूरों की दुर्दशा देख कर वे ज़ार ज़ार रोए हैं—

"तीजे चौथे पावहूँ कहुँ रोटी अध पेट !
ता पै खटमल चीलरहु निस दिन करत चपेट !!"

"विषम वृषादित की तृषा मृषा मरहिं बिनु वारि !
परहिं न कबहूँ पेट, पै सुख की रोटी चारि !!"

"फटे पुराने चीथड़े गहत बनै न मिलाय !
शीत निवारन हेतु हा ! कंथा हू न सिलाय !!"
"फरे रहैं जूँ चीलरन भरे रहैं मल मूत !
लेत बरेठहु यहि डर न बहि जैहैं सब सूत !!"
"नहिं सुनात चातक रटनि नहिं कोकिल की कूक !
चहुँ दिशि हाहाकार है हा भोजन ! हा भूक !!"

मज़दूरों की दशा किसानों की दशा से रत्ती भर भी बेहतर नहीं है। "सहत सदा जठरागि के, वे (भो) भीषण संताप" ! न्याय-नीति का बेड़ा ग़र्क हो गया है !

"कहाँ दया ? कहँ धर्म है कहाँ दीन-ईमान ?
श्रमिक सदा संकट सहैं करत न कोई कान !!"
"एकन के नित श्वान हूँ दूध, जलेबी खाहिं,
अन्न बिना सुत एक के हा रोटी ! रिरिआहिं !!"

इस मनुष्य-जनित पैशाचिक विषमता पर बर्नर्डशा ने भी अपनी एक पुस्तक में दर्द भरी टिप्पणी की है। (While poor men are starving rich men's dogs are being over fed) भारतवर्ष में तो इस विषमता का इतना विस्तार है जितना आकाश का ! यह कहाँ नहीं पाई जाती, किस कूँचे में, किस गली में किस घर में नहीं पाई जाती ?

"है जब लौं 'सम्पत्ति' पं, वैयक्तिक अधिकार" तब तक यह विषमता नहीं मिट सकती। अशान्ति की आग भड़कती ही रहेगी !

"जब लौं 'श्रम' अरु उपज कौ होत न साम्य विभाग,
बुझै बुझाए किमि कहौ यह अशान्ति की आग !"

'करुण सतसई, जैसे साहित्य से ही ऐसी विद्युत शक्ति का

प्रादुर्भाव हो सकता है. जो लोगों के मस्तिक और हृदय में साम्यवाद का विप्लव पैदा कर दे। मैं 'करुण सतसई' को आने वाले अक्षय साम्य-युग का अमर संदेश समझता हूँ। मुसाफ़िर हूँ, मेरे पास इस समय अँगरेज़ी और हिन्दी के कोष के अतिरिक्त कोई पुस्तक नहीं है। मुझे 'करुण-सतसई' पढ़कर अमर साम्यवादियों की कुछ अमर पुस्तकों की याद आ रही है। वे पुस्तकें पास होतीं, तो उनके कुछ अंश उद्धृत करके बतलाता कि सतसई साम्यवाद के सिद्धांतों की रूह है। दोहे भारतीय किसानों और मज़दूरों को बहुत पसंद आते हैं। जब वे अनुभव करेंगे कि करुण सतसई के प्रत्येक वाक्य में उनके करुण-क्रन्दन की प्रतिध्वनि है—जब वे अपनी दशा के समान काले अक्षरों के बीच में काग़ज़ की तरह उज्ज्वल आशा की किरण चमकती देखेंगे, तब वे 'करुण-सतसई' को वैसे ही अपना लेंगे जैसे उन्होंने कभी किसी "धर्म-पुस्तक" को भी नहीं अपनाया था। 'करुण-सतसई' अमर होगी और श्री रामेश्वर जी 'करुण' अमर होंगे। इस छोटी सी भूमिका की इतिश्री यह बड़ी भविष्य वाणी है।

यूरोप जाते समय रेलगाड़ी में
२३ मार्च, १९१९।

जङ्गबहादुरसिंह

समर्पण और सन्देश

जिन हाथन हीने भए
दीन कृषक - श्रमकार
सहठ समर्पित है तिन्हैं
यह अनन्य उपहार !
कृषक - मजूरन पै जिन्हैं
है अनुभूति असेस,
करि आशा तिन करन मैं
अर्पित यह संदेश—

'सुख-सुविधा पावहिं श्रमिक'
'विनु श्रम लहै न कोय'
साँचे देश - सुधार की
हैं वस वातैं दोय ॥

अपनी ओर---

आज से ठीक पैंतिस वर्ष पहलेकी बात है। नव-उन्नति का उज्वल सन्देश लाने वाली 'बीसवीं शताब्दी' का शुभागमन हुए अभी केवल एक-डेढ़ मास हुआ था,---हाँ, वह १८०१ ईस्वी की शिवरात्रि का प्रात:काल था---जब कि इटावा (यू० पी०) के--केवल पाँच-छ; घरों के कदमपुरा नाम के एक अति सामान्य गाँव में, 'कहाँ! कहाँ!' की रोदन-ध्वनि से किसी हल-बैल विहीन किसान के 'घर' की अशान्ति-वृद्धि करता हुआ एक बालक उत्पन्न हुआ। उसे "घर' केवल इस लिए कह सकते हैं, क्योंकि उस में उस किसान का 'विविध कुटुम्बी जिमी धन-हीना' की सत्यता सिद्ध करने वाला परिवार रहता था। अन्यथा उसकी अवस्था किसी खँडहर से अधिक अच्छी न थी! चारों ओर को दीवारें बरसात के थपेड़े खा-खाकर अत्याचार पीड़ित किसानों की नाईं कहीं आधी कहीं सारी गिर गयी थीं जिनके द्वारा कुत्ते-बिल्ली आदिक जीव जन्तु अपने आखेट के अनुसन्धानार्थ निर्द्वन्द्व घर में आ जा सकते थे! मुख्य द्वार पर दो-तीन अनगढ़ तख्ते अपनी टूटी टाँगे अड़ाए हुए किवाड़ों का अभिनय कर रहे थे! भीतरी भाग में एक ओर फूस की छानी और दूसरी ओर एक अधपटा बरोठा। प्रथम भाग टूटे-फूटे अन्न-हीन मृत्तिका-पात्रों से, जो आपस में टकरा कर बहुधा अचानक ही कराहने लगते थे, भरा हुआ था, और दूसरा भाग टूटी हुई खाटों और फटी हुई कथड़ियों का एक असाधारण संग्रहालय था, जिस में दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि, इस आलीशान घर के निवासी, अपने अवकाश की घड़ियां बिताया करते थे! पशु-धन का अभी तक यहां सर्वथा अभाव था।

हाँ, यदि कभी कहीं से कोई 'मरी टूटी बछिया' इस 'बाम्हन'-परिवार में आ जाती थी, तो उसे भी इसी दूसरे भाग में आश्रय मिलता था।

हाँ, तो करुणा की साक्षात प्रतिमा एक दीना-हीना माता ने, इसी दूसरी 'बिल्डिंग' में उपरोक्त बालक को प्रसव किया था। किन्तु अरे! आज वह खायेगी क्या! घर में तो अन्न का एक दाना भी नहीं है!! बालक के पिता जी उस समय घर पर नहीं थे, और सुना है उनके पधारने पर जब किसी के द्वारा उन्हें पुत्र-जन्म का शुभ सम्वाद सुनाया गया, तो वे कहने लगे, "अरे! जे तो रोज जुई स्वाँग बनाएँ बैठी रहती हैं! हम कहाँ लौं रोज रोज धनकुब (धाय) बुलाय बुलाय बैठारैं!"

बालक के पिता श्रीमान् (?) शिवचरणलाल जी शुक्ल निपट निरक्षर होते हुए भी भावुकता से भरे स्वभाव वाले थे, साथ ही जीवन-संग्राम में सर्वदा पराजित हो-होकर उनका अन्तस्तल सर्वथा चकनाचूर हो रहा था, इसी कारण उन्होंने उपरोक्त वेदना व्यञ्जक वाक्य कहे थे। अपने जीवन में, इने-गिने अवसरों पर ही उन्हें दोनों समय भर पेट भोजन प्राप्त हुआ था! इस पर भी कोढ़ में खाज के समान बढ़ती हुई संतान-संख्या अब उनकी विरक्ति का कारण बन रही थी!

समयानुसार बालक का नाम भजनलाल रक्खा गया। किन्तु संयोग से उन्हीं दिनों एक समीपस्थ गाँव के सम्पन्न (जमींदार) घराने में उत्पन्न एक बालक का नाम भी भजनलाल रक्खा जा चुका था, अस्तु उन निर्धन पिता जी की अनधिकारचेष्टा पर कुंठित हो कर उस सम्पन्न परिवार वालों ने उन्हें इतनी डाँट-फटकार बतलाई कि इच्छा न रहते हुए भी बेचारों को बालक का नाम बदल कर रामेश्वर रखना पड़ा!

इन चन्द चावलों को देख कर ही पूरी हण्डी के भात का अनुमान करने वाले वाचकवृंद सरलता से समझ सकते हैं, कि इतनी प्रतिकूल

परिस्थितियों में पलने-पुसने वाले उपरोक्त बालक का शिक्षण-संरक्षण कहां तक समुचित रूप से हो सका होगा ! भला जिस किसान के घर दाने-दाने के लिये लाले पड़े रहते हों, जहाँ पाँच छः व्यक्तियों का भरण-पोषण पिता जी की दरिद्रता तथा किंकर्तव्यविमूढ़ता—नहीं नहीं, विषमयी विषमता के आधार पर आधारित निष्ठुर समाज की कुव्यवस्था, श्रम-शक्ति और साधनों के असमान विभाजन—के कारण बड़ी कठिनाई से हो रहा हो, जहाँ एक सद्यः प्रसूता जननी, चक्की पीस-पीसकर गोबर पाथ-पाथकर, और कपास बीन-बीनकर, अपने पति और पुत्रों का पेट पालन कर रही हो, वहाँ, उस नवागुन्तक संतान की उच्च शिक्षा-दीक्षा कहाँ से हो सकती थी ? उसके लिये तो यही कम सौभाग्य की बात नहीं थी, कि वह किसी प्रकार जीवित तो रह सका । अस्तु—

वही बालक रामेश्वर, 'करुण सतसई' नाम की इस क्षुद्र कृति के कर्ता के रूप में आज आप के सम्मुख उपस्थित है । लज्जा और संकोच के कारण उसके हाथ काँप रहे हैं ! वह सोचता है—"हाय, मेरे इस दुस्साहस पर न जाने कौन क्या कहेगा ? कवित्व की कसौटी पर कसते ही जब यह सर्वथा फीकी, अरुचिकर, और सहस्रों काव्यदोषों से परिपूर्ण निकलेगी, तब, परिहास के उस परिप्लावन से, जो प्रकृत 'कवियों' और लेखकों की ओर से पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया जायगा, मैं किस प्रकार निस्तार पा सकूँगा !"

किन्तु एक बात का स्मरण हृदय को धीरज देता है । कवि न सही, लेखक, विचारक अथवा विद्वान भी न सही, मैं एक भुक्त भोगी तो हूं, दरिद्रतादेवी का दारुण दृश्य तो अपनी ही आँखों देखे बैठा हूँ, क्रूर, कुटिल और सत्यानाशक समाज का अनन्य आखेट तो हूँ, विषमता की विषमयी ज्वाला से जला हुआ एक मृतप्राय प्राणी तो हूं ! बस, इतने प्रमाण-पत्र बहुत हैं । क्या इतने से भी हे मेरे कवि-सम्राट जी ! संतोष न कीजियेगा ?

यदि नहीं, तो आइये, मेरी छाती पर, बाईं ओर धड़कते हुए हृदय को चीर कर देख लिजिये ! देखिये, उस में पड़े हुए असंख्य फफोले इस बात की साक्षी दे रहे हैं या नहीं, कि हमारे निर्दयी समाज ने, वैयक्तिक और सार्वजनिक विपमवाद ने, हमारी सभ्यता-संस्कृति-धर्म और धर्मियों ने, और इन सब से पूर्व हमारी साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था ने, उसे, उस दिल को, मसल कर, जलाकर, ठुकरा कर, चलनी-चलनी कर रक्खा है या नहीं ! हमारी 'असन, बसन और बास' की अव्यवस्थाओं ने, हमें रुला कर, तड़पा कर, हमारा मलियामेट कर रक्खा है या नहीं ! बस, तब, और तभी, जब आप इस व्यथित, भीषण वेदना से प्रज्वलित, ज्वालामुखी को, भली-भाँति चटचटाता और धुँधुआता हुआ देख सकेंगे, तब, आपके मुख से हठात् यह वाक्य निकल पड़ेंगे:—

शब्द कैसे भी हों, भाषा कोई भी हो, भले ही छोटे मुँह बड़ी बात कही गयी हो, पर है सब ठीक। उच्च शिक्षा-दीक्षा के अभाव में, केवल अपने ही अनुभव के आधार पर एक भुक्त-भोगी ने, जो कुछ देखा, सुना और समझा, चाहे वह खरा हो या खोटा, प्रिय हो या अप्रिय, सत्य हो या असत्य, सात सौ दोहों द्वारा, स्पष्टता और निर्भीकता पूर्वक, ईमानदारी और सचाई के साथ, केवल इस आशा से कह दिया है, कि; (तुलसी के शब्दों में)

'संत हंस गुन गहहिंगे परिहरि वारि-विकार।

दोहों की भाषा, मैं जानता हूँ, शुद्ध 'ब्रज भाषा' नहीं है। उस में 'अवधी' आदि अन्य भाषाओं की झलक यत्र-तत्र पायी जाती है, जिसका कारण केवल मेरी अप्रयत्नशीलता मात्र है। यदि मैं प्रयत्न करता, तो ढूँढ़-ढूँढ़कर ब्रज-भाषा के तत्सम शब्दों का प्रयोग कर सकता था, पर ऐसा करते हुए अकारण ही एक तो मुझे अनेकों कष्टों का सामना करना पड़ता, और दूसरे, भाषा (मेरे विचार से) क्लिष्ट

दुर्बोध-सी हो जाती। अस्तु, इन दोनों बातों को अपनी उद्देश्य-सिद्धि में बाधक जान कर मैं वैसा न कर सका।

अधिकांश स्थानों में 'व' के स्थान में 'ब' का प्रयोग मुझे सरल, सुगम तथा श्रुतिमधुर समझ पड़ा, अतः मैंने निस्संकोच वैसा ही किया है। पाठक कृपया इसे प्रूफ-सम्बन्धी अशुद्धियाँ न समझ कर मेरी रुचिप्रियता मात्र समझेंगे।

प्रबल प्रयत्न करने पर भी, पुस्तक में प्रूफ-सम्बन्धी अनेक भद्दी भूलें रह गयी हैं, जिनका कारण केवल मेरी साहाय्य हीनता है! दुर्भाग्य से मुझे कोई ऐसा सहायक न मिल सका, जो एक बार भी चलती निगाह से प्रूफ देखता जाता! अत. इसके लिये भी, आशा है पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

जैसा कि प्रारम्भ में ही प्रकट किया जा चुका है, यह पुस्तक मेरे वैयक्तिक विचारों और अनुभवों का संग्रह मात्र है, इसलिये अधिक पुस्तकें देख-देखकर मुझे अपना निबंध बाँधने की आवश्यकता नहीं पड़ी। फिर भी 'देश की बात' तथा 'भारत भारती' आदि ग्रन्थों से जो विचार ग्रहण किये गये हैं, तथा अनेक अज्ञात कवियों के काव्यों की छाया में मुझे जो रचना-क्रम चलाना पड़ा है, उसके लिये उन ग्रन्थों और काव्यों के कर्ताओं को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

इसके पश्चात मैं अपने मृत माता-पिता को, जिनके द्वारा मुझे, दुखमयी दारुण दीनता के दीव्य दर्शन प्राप्त हुए, धन्यवाद पूर्वक स्मरण करता हूँ। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि वे धन-सम्पन्न होते—मुझे वाल-घुटी के रूप में 'अभावों' का आसव पिलाने में असमर्थ होते—तो प्रयत्न करने पर भी मैं इस कृति को इस रूप में उपस्थित न कर पाता। अस्तु, उनके चरणों में सच्चे हृदय से मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

हाँ, एक प्राणी और भी है, जो कि मेरे धन्यवाद का प्रमुख पात्र

है,—मेरी पत्नी श्रीमती अध्यापिका प्रफुल्लबाला देवी। आप ही के अमित अनुग्रह के बल पर इन पंक्तियों का प्रादुर्भाव हो सका है। अस्तु, आशा है आप सर्वदा प्रोत्साहन देकर इन हाथों से ऐसे ही कृत्यों का आयोजन करती रहेंगी।

अब रहे इस पुस्तक के प्रस्तावना-लेखक ('ट्रिब्यून' के सहकारी सम्पादक) कॉमरेड जंगबहादुर सिंह जी। सो उनको साधु-वाद देने के लिये मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं। इसलिये नहीं कि आपने इस क्षुद्र कृति को 'अक्षय युग का अमर संदेश' विघोषित करते हुए इस अकिञ्चन लेखक को नये उज्ज्वल युग के निर्माण-कर्ता कवि आदि नामों से स्मरण किया है, (नहीं, यह तो उनका मेरे प्रति वैयक्तिक स्नेह मात्र है।) वरन इसलिये कि सुदूर यूरोप-यात्रा की हलचलपूर्ण परिस्थितियों में लाहोर से बम्बई जाती हुई 'बाम्बे मेल' में यात्रा करते हुए भी अपने बहुमूल्य समय का कुछ अंश निकाल कर आपने 'वरुण सतसई' की प्रस्तावना लिखी है। अस्तु।

अब उन साधु-संतों-महन्तों, वर्णव्यवस्थापकों, समाज के संचालकों ज़मींदारों, साहूकारों तथा पूँजीपतियों, सत्ताधारियों और मज़हब-परस्तों आदि से विनम्र शब्दों में क्षमा-याचना करना मैं अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ, जिनके कामों की ओर मुझे भर्त्सनापूर्ण शब्दों में संकेत करना पड़ा है। अवश्य ही स्थान-स्थान पर उनके कृत्यों की कटुता-पूर्ण समालोचना की गयी है, किन्तु सचाई, ईमान्दारी और नेकनीयती के साथ, सदाशयतापूर्वक, सब की हित-कामना को लक्ष्य में रख कर। यह निश्चय है, कि काल-चक्र का तीव्रगामी प्रवाह हमें किसी नए-निराले लक्ष्य की ओर लिये जा रहा है, आज नहीं तो कल हमारा कायापलट होना अवश्यम्भावी है। इसलिये क्यों न हम सब, समय के प्रवाह में बहना सीखें, बहती गंगा में हाथ धोकर क्यों न उन मनमानियों को, जो 'असत्य के प्रयोग'-स्वरूप मानव-

जीवन में अकारण ही आ घुसी हैं; और जिनके कारण हमारा मानव-समाज त्राहि-त्राहि कर रहा है, मिटाकर एक नव्य-नूतन-युग की सृष्टि करें। उस युग की, जिस में न कोई ब्राह्मण हो न पूँजीपति, न शासक हो न शासित। सब समान,—हाँ-हाँ पूरी तरह पर समान— हों, खाने-पीने में, पहनने-ओढ़ने में, और रहने-सहने में। इसी चिरपोषित सुख-स्वप्न की सार्थकता सिद्ध करने के लिये, इस निर्बला लेखनी द्वारा सात सौ अनगढ़ अलङ्कार-शून्य पदों में फ़रियाद करनी पड़ी है। यदि सचमुच इनका उद्देश्य मानव-जीवन—नहीं-नहीं सम्पूर्ण चराचर जीवन-जगत की हित-कामना है, यदि इस 'अप्रिय सत्य'-कथन द्वारा सब का कल्याण अभिप्रेत है, और इसी महानतम मंगल व्रत के साधनार्थ मुझे किसी की निन्दा करनी पड़ी है, तो क्या यह सोचकर कि—

> "निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय,
> बिन पानी साबुन बिना उजरो करत सुभाय !"

मैं क्षमा का अधिकारी नहीं हूँ ? आशा तो है, कि उपरोक्त प्रतिवादी-जन-समुदाय मेरे आशय की तह तक पहुँचने में समर्थ होगा, आगे उसकी इच्छा।

अन्त में जिन कम्पोज़ीटरों ने आँखें गड़ा-गड़ाकर—एक एक अक्षर, पाई, मात्रा, जोड़-जोड़कर—इस पुस्तक को यह सुन्दर रूप-लावण्य प्रदान किया, उन श्रमजीवियों के लिये, सच्चे हृदय से कृतज्ञता-प्रकाश कर के, मैं इन पंक्तियों को समाप्त करता हूँ।

करुण-काव्य-कुटीर
कृष्णनगर लाहौर
शिवरात्रि–१९९१ वि०

अकिञ्चन
रामेश्वर 'करुण'

करुण और करुणा

द्वितीय संस्करण

करुण सतसई के रचयिता स्वर्गीय श्री रामेश्वर 'करुण' के जीवन को लगातार २४ वर्षों तक मैंने निकट से देखा है । मेरे सामने ही उनका साहित्यिक जीवन आरम्भ हुआ और मेरे ही सामने उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की । अपने जीवन-काल में उन्होंने सदा अन्याय का विरोध तथा दलितों और पीड़ितों का समर्थन किया । बड़ी-से-बड़ी हानि उठा कर उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार अपने सिद्धान्तों की रक्षा की । वस्तुतः वे एक महापुरुष थे उनकी आत्मा महान् थी ।

करुण सतसई उसी महान् आत्मा की भाषा है; उसी अमर आत्मा का अमर सन्देश है । कवि को जहाँ भी कोई दोष दिखाई पड़ा है वहीं उसने ज़ोरदार शब्दों में उसे दूर करने के लिये आवाज़ उठाई है । उसके लिये उसने जिसे जिम्मेदार समझा उसकी पूरी खबर ली है—वह सरकार हो, नेता हो, अथवा स्वयं परमेश्वर ही क्यों न हो ।

करुण जी का जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा है, वे बड़े कर्मठ, स्वावलम्बी, निर्भीक, साहसी और खरे व्यक्ति थे । आजीविका या धनोपार्जन को उन्होंने अपने आत्म-सम्मान के सामने कभी महत्व नहीं दिया । इसके फलस्वरूप उन्हें बारम्बार जीविका के लिये एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाना पड़ा, पर जहाँ भी गये उन्होंने अपनी योग्यता के बल पर अपने लिये स्थान ढूँढ निकाला । उनके गुणों के कारण उनके विरोधी भी उनका हृदय से सम्मान करते थे ।

विषमता के आधार पर निर्मित हमारे समाज में उन्नति के लिये समान अवसर आज भी स्वप्न ही बना हुआ है । करुण जी जैसे प्रतिभावान् व्यक्ति को यदि सुअवसर मिला होता तो वे निश्चय ही समाज में ऊँचे-से-ऊँचे पद पर पहुँच सकते थे । वे अपने समय के बड़े से बड़े प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्री, बैरिस्टर, समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ हो सकते थे इसमें सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं है ।

साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने विविध प्रकार की रचनाएं कीं । करुण-सतसई के पहले ही शिक्षा-विज्ञान नामक उनकी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी । उसके बाद तो उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में कई पुस्तकें लिखीं । बाल-गोपाल, ईसपनीति-निकुञ्ज, वीर-गाथा, चिनगारी, हकीकतराय, लवपुर-लावण्य, बाल-रामायण, तमसा और गान्धी-गौरव का हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान है । इसके अतिरिक्त 'शिक्षा' का सम्पादन करके उन्होंने बालकों को स्वस्थ और मनोरञ्जक साहित्य देने का प्रयत्न किया पर अन्त में अस्वस्थ होने पर उन्हें उसे बन्द कर देना पड़ा। पञ्जाब के शिक्षा-विभाग में उनकी हिन्दी रीडरें बड़ी लोकप्रिय हुईं । पत्रों में प्रकाशित उनकी व्यङ्गपूर्ण राजनीतिक कविताएँ और हास्य के कालम अपने ढंग की निराली चीजें हैं ।

मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि ज्यों-ज्यों समय बीतेगा करुण जी की रचनाओं का आदर बढ़ेगा । अपने प्राण देकर भी उन्होंने अपने सम्मान की रक्षा की है । हमारी अगली पीढ़ी उन्हें सम्मानित करके उसी सम्मानपूर्ण आसन पर उन्हें आसीन करेगी । करुण-सतसई का यह दूसरा संस्करण इसी का संकेत है ।

१ जून १९४८ —अनन्त मराल शास्त्री

विषय-सूची

पहला शतक
[पृष्ठ २ से २२ तक]

दूसरा शतक
[पृष्ठ २२ से ४६ तक]

तीसरा शतक
[पृष्ठ ४७ से ७६ तक]

चौथा शतक
[पृष्ठ ८० से १२१ तक]

पाँचवाँ शतक
[पृष्ठ १२३से१६२ तक]

स्वगत—

रहत सबल सम्राट हू जा के बल भयभीत,
हरै विसमता-व्याधि, सो समता-नीति पुनीत ! ॥१॥

अत्याचारिन पै परैं जो बनि वज्र बिसाल !
आह ! न आँखिन आजु क्यों आवहिं अश्रु कराल ? ॥२॥

जकि जैहै पैहै न पै दुख - दारिद - अवगाह !
चली लेखनी - भेखनो ! नापन सिंधु अथाह !! ॥३॥

लिखन चली जिनके दुखन करि श्रम - साहस पूर,
लिखि हारे लेखनि ! किते सुकवि - सुलेखक-सूर ? ॥४॥

सुपद सुगीत न 'दोहरे' नहिं 'नावक के तीर'—
करुन कराहन के कढ़े कछु संताप गँभीर ! ॥५॥

कवित-विवेक न बुद्धि-बल सकल कला-गुन-हीन !
मन सुखी न, तन छीन, त्यों दीन - मलीन - अधीन !! ॥६॥

चाँद - छुवन की आस लै वामन चढ़्यो अकास—
देखि, रहे समरत्थ को विन कीन्हें परिहास ? ॥७॥

× × × ×

व्याधि विसमता के दुखन दीखै दुखी सुभाय,
नव आशा - संचार - से सरल दोहरे ताय !
सुविधा श्रमजीवीनु की हरि, हरिअरो लखात,
ताहि सरल हू वक्र-सी समवादिन की बात ! ॥८॥

पहला शतक
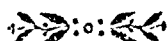
रे नर !

मानुस-जन्म अमोल लै दीन्ह्यों व्यर्थ विताय !
कह कीन्ह्यों जस जाय जग रे नर ! कहत न काय ? ॥१॥

कबहुँ तप्यो पर-ताप तें ? हरी कबहुँ पर-पोर ?
आसा-हीन—अधीर कहँ कबहुँ बँधायी धीर ? ॥२॥

आयो आपत-काल महँ कहुँ काहू के काम ?
आप सह्यो सन्ताप कहुँ दै औरहिं आराम ? ॥३॥

हरे कबहुँ दुख दीन के प्रिय प्रानन पै खेल ?
विपति विडारी काहु की आप आपदा झेल ? ॥४॥

देखत पर-परिताप कहुँ कीन्ह्यों अश्रु-निपात ?
अत्याचार—अनीति बहु देखि जरे कहुँ गात ॥५॥

कहुँ अनाथ—असहाय की कीन्हीं कछुक सहाय ?
पार कियो कहुँ काहु को अपनो हाथ गहाय ? ॥६॥

× × × ×

नारकीय कहुँ यातना सुन हरिजन की कान,
पश्चात्ताप—विलाप तें तड़पाये तन-प्रान ? ॥७॥

दुखिया—दीन किसान की करुणा कथा सुनि कान !
कबहुँ समर्प्यो प्रेम सों जन जीवन धन प्रान ? ॥८॥

सुनि श्रमजीवी दीन की करुणाजनक पुकार,
तिलमिलाय तड़पाय कहुँ कीन्ह्यों कछु प्रतिकार ? ॥६॥

बेकस विधवा वाल की देखि दशा दयनीय,
करुणा के उद्रेक तें कबहुँ पसीजो हीय ? ॥१०॥

नत मस्तक बैठो निरखि दीन-दुखी बेकार,
दै धीरज कीन्हीं कबहुँ कोमल बातैं चार ? ॥११॥

भटकत फिरत गलीन लखि आश्रय-हीन अनाथ,
कहुँ समोद निज गोद लै सुख दै कीन्ह सनाथ ? ॥१२॥

रोगन-मारो, जरठ, जड़, डगमगाय, कम्पाय !
छिनक सहारो लाय कहुँ ठाढ़ो करो उठाय ? ॥१३॥

शक्ति-हीन, तन छीन, कृश, 'हा पानी !' रिरिआय !!
कबहुँ पिवायो प्यार सों जल द्वै बुंद तपाय ? ॥१४॥

बिलपै, कलपै, सिर धुनै, कहरै पाय कलेस !
निरुज कियो कहुँ काहु को करि उपचार असेस ? ॥१५॥

जारो जड़ जठरागि को बिन रोटी बिलपाय !
खूब खवायो ताहि कहुँ समुद समीप बिठाय ? ॥१६॥

देखि दबो अज्ञान-घन दुखिया दारिद देस, !
ज्ञान-बयारि बहाय कहुँ जड़ता हरी असेस ? ॥१७॥

× × × ×

कवि—

विधि से, निधि से, नेम से, गुरु से ग्यानी, गन्य !
रवि से, छवि से, छेम से कवि से[1] कविवर, धन्य !! ॥१८॥

विधि-जाये जन विश्व के जिन-सङ्केतन जायँ,
सुकवि-सिरोमनि ते न क्यों विधि तें बड़े कहायँ ?[2] ॥१९॥

× × × ×

प्रबल कुहू-तम-दीन-दुख नासहिं करि उद्योत,
सूर-ससी सम सुकवि, नहिं मो सम खल खद्योत ! ॥२०॥

करुण कथा कोउ दीन की कहतो सुकवि प्रवीन,
किमि लहतो उपहास इमि मो सम मनुज मलीन ? ॥२१॥

× × × ×

जिन दिन देखे वे सुकवि गये सु द्यौस सिराय !
अब हैं पालक पेट के समय-सुहाती गाय !! ॥२२॥

× × × ×

कविहिं कह्यो का जानिकै विधि तें बड़ो कवीन ?
जासु अछूत जन जाति के दीखहिं दीन—अधीन ? ॥२३॥

---

(१) कवि—परमेश्वर। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।
—उपनिषद्।

(२) विधि तें कवि सब बिधि बड़ो या में संशय नाहिं।
छै रस विधि की सृष्टि में नौ रस कबिता माहिं।
—अज्ञात कवि।

'रवि न जाय तहँ जाय कवि' सुनियत उक्ति उदार !
दीखत दीनन—द्वार क्यों इमि अंधेर अपार ? ॥२४॥

छूटे सुख-साधन सबहि फूटे श्रमिकन-भाग ?[1]
कविगन आजहुँ अलापहीं कुच-कटाक्ष के राग !! ॥२५॥

कह्यो कविन शृंगार ही यद्यपि सुषमा—सार,
सोहै किन्तु मसान महँ कबहुँ कि राग मलार ? ॥२६॥

देखि दशा सुकवीन की सुधि आवै उपखान—
'भौन जरै इक दीन को इक गावै मृदु तान' !! ॥२७॥

× × × ×

देखि देश-कानन दह्यो दुसह दुकाल-दवाग,
कवि-कोकिला अलापहीं ढूँढन बैठि सुराग !! ॥ २८ ॥

सुरभित मधु मधुमास महँ गावन जोग—अमोल,
सुपद सुनावहिं सुकवि जनु बैठि चिता के कोल[2] !! ॥ २९ ॥

---

(१) 'राजा की सात रानियों' तथा 'कल्पित प्रेम पात्रों की कहानियों को ही साहित्य की सर्वोपरि कला समझने वाले कवि तथा लेखक महानुभाव ! यह उपयोगितावाद का युग है, आज प्रत्येक देश अपने समय और शक्ति को अधिक से अधिक उपयोगी कार्यों में व्यय करना आवश्यक समझता है। फिर क्या भारत के कवि और लेखक जैसे उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्ति, अपनी कृतियों को उपयोगिता से शून्य—सर्वसाधारण के असन बसन और वास की व्यवस्था से विहीन रख कर, केवल 'स्वान्तस्सुखाय' की नीति का अवलम्बन कर के, स्वार्थपरता जैसे जघन्य पाप के भागी नहीं बन रहे हैं ? अस्तु, अब वह समय आ गया है जब कि साहित्य की रचना सर्वसाधारण के अधिक-से-अधिक लाभ—उपयोगितावाद—को समक्ष रख कर होनी चाहिए।

(२) कोल (कूल)=समीप (पंजाबी)

सुनि छोटे मुख बात बड़ि कुपित भये कविराय;
'दुखिया देश अधीन ह्वै सुकवि-विहीन लखाय' ॥३०॥

गहे डाँड़ जन-पोत को पर-बस-वारि अथाह !
समुझि न आवत जात हैं कवि-केवट केहि राह ? ॥३१॥

नख-सिख कुचहु कटाच्छ तें सरै न एकौ काज !
किमि जानै जग दीन-दुख बिनु साँचे कविराज ? ॥३२॥

धनिक जोंक बनि बनि सदा करहिं अशोनित—छीन ।
भभकाए हूँ 'रस-कलस' सरस होहिं किमि दीन ? ॥३३॥

+ + + +

नित ऊलत 'उस पार', पै अब लौं अवलोकौ न,
श्रमिक-समाधिन पै बने श्रीमानन के भौन !! ॥३४॥

निस-दिन 'झंझावात' के मरमर सुनत महान,
आवत कृशित किसान की किन्तु कराह न कान !! ॥३५॥

मूक भई लखि 'वीन', बहु बोधहु सखे ! सखेद,
लखौ न क्यों कवि, दीन को मूक वेदना-भेद ? ॥३६॥

खेवत कल्पित 'नाव' नित संसृति-सागर-पार !
डूबत लखत न देस की तरनी बिन पतवार ? ॥३७॥

× × × ×

सबहिं बनावत काल ? नहिं बदलहिं काल बनाय[1],
सुकवि-सिरोमनि वीर, नहिं थिति पालक कविराय ॥३८॥

× × × ×

१—निम्नाङ्कित पद्य की छाया में—

लोग कहते हैं बदलता है जमाना सब को,
मर्द वह हैं जो ज़माने को बदल देते हैं ।

—अज्ञात कवि ।

कोइ छाया-माया विधे कुच-कटाक्ष विंध कोय।
दीन-गुहारन जो विधै सुकवि सराहिय सोय ॥३९॥

× × × ×

थोथे पोथे काव्य के रचि रचि धरे अनेक!
श्रमकारिन के लाभ की बात न बरनी एक!! ॥४०॥

× × × ×

नेता—

करत समुन्नति जो सदा सरल सुमार्ग लखाय,
न्याय-नीति-नरता-निरत नेता निपुन कहाय। ॥४१॥
परै प्रलोभन कोटि किन करै न चञ्चल कोय,
खरो कसौटी तें कढ़ै नेता कहिये सोय। ॥४२॥

× × × ×

जैसी बहै बयारि, तब तैसी पीठ पराहिं !
लघु चेता, लेता सुयश नायक नेता नाहिं। ॥४३॥
राखत ध्यान न ध्येय को भाखत ईठ-अनीठ !
ता कहँ नेता क्यों कहत लगो रहत पर-पीठ !! ॥४४॥
सुने 'सुधारक' 'भक्त' 'प्रिय' देखे 'बन्धु'[1] अनेक,
साँचो 'नेता' पाइये कहुँ कोटिन में एक। ॥४५॥

---

(१) देखिये न, कितने आकर्षक शब्द हैं ! कैसी ऊँची और मन-मुग्ध-कारिणी पदवियाँ हैं ! भला इनकी प्राप्ति के लिये दो-चार बार जेल हो आना, और वहां विशेष श्रेणियों की सुविधाएँ प्राप्त कर के साल-दो-साल गुज़ार देना कौन सी बड़ी बात है ? सर्व-साधारण की श्रद्धा के भाजन बन जाना, और उनसे उच्च स्वर में 'ज़िन्दाबाद' के नारे प्राप्त करना एक बात है, और नेता के कर्तव्यों का निम्नलिखित दोहे के आशय में पूर्ण करना उससे सर्वथा भिन्न है;

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुआठी हाथ,
अपनो भौन जराय कै चलौ हमारे साथ।

धन्य कबीर ! तुमने नेता के कर्तव्यों का यथार्थ दिग्दर्शन कराया है।

चढ़ै समुन्नति-सीस किन बीस बिसे सो जाति,
जेहि-नेता अपनावहीं ठोस कर्म, तजि ख्याति ॥४६॥

बेड़ा भारत-भूमि कौ किमि करिहैं ये पार ?
नित्य नशा नेतत्व कौ जिन पै रहतस वार ! ॥४७॥

कोटि-कोटि भुक्खड़ इतै बिनु रोटी बिलपाहिं !
उत नेता लै नागरिनु सभा-जलूस रचाहिं !! ॥४८॥

मान-पत्र मुखपृष्ठ पै इत बाँच्यो हरपाय,
उत—"कारिन्दा-जुर्म तें रैय्यत रही पराय'!!" ॥४९॥

करत कहावत यह सही बहुतक बिस्वा बीस—
'मारु मारु रहते चलौ सूजे नपुंसक ईस' ! ॥५०॥

× × × ×

---

(१) अब समय आ गया है जब नेता नामधारी इन रँगे सियारों से सर्व-साधारण को सचेत कर दिया जाय ! ये महापुरुष एक ओर अपनी जोशीली तकरीरों द्वारा जनता से वाह वाही हासिल करते हैं, और दूसरी ओर इन्हीं की ज़मींदारी के गाँवों अथवा कल-कारखानों में इनके अपने ही कारिन्दों-गुमाश्तों और मैनेजरों द्वारा बेचारे दीन-हीन, किसान-मजदूरों की गर्दनें रेती जाती हैं ! क्या इन पंक्तियों द्वारा ज़ोर-शोर से चिल्लाकर इन श्रीमानों से पूछा जा सकता है कि क्या आप इसी प्रकार की दो-रंगी नीति से मूक पशुओं के समान इन गरीब दुखियों को ठगते रहेंगे ? यदि हां, तो फिर वह 'स्वराज्य' किस चिड़िया का नाम है जिसे आप गोरे-शासकों से माँगा करते हैं ? स्मरण रहे जब तक काले पूंजीपतियों (राजाओं, ज़मींदारों अथवा मिल-मालिकों) द्वारा दीन-हीन मजूर-किसानों को अत्याचार की चक्की में पीसा जा रहा है, तब तक गोरे शासकों से स्वराज्य माँगना 'स्वराज्य' शब्द की विडम्बना मात्र है !

लखि पैहो प्रिय देश की उन्नति सत्य—सही न,
जब लौं रट न लगाइहौ 'ग्राम—ग्राम—ग्रामीन'। ॥५१॥

पावस के कृमि-कीट लौं उपजैं नेता भूरि !
सोई सुजन सराहिये करै श्रमिक-दुख दूरि ॥५२॥

———

हाय रोटी !

छोटी हू पै नित नयी मोटी राखत काय,
पाय तोहिं हुलसाय हिय धनि रोटी ! जग माय !! ॥५३॥

× × × ×

तुपक, तीर, तोमर, तवर करत न नेकु सहाय,
प्रबल बुभुक्षा को कटक रोटिहिं पाय पराय ! ॥५४॥
डासन[1] स्वर्ण बनाय वरु सोवै हीरक-खान,
खोवै भूखहि-त्रास तें द्वै रोटी बिनु प्रान ! ॥५५॥
रोगी, भोगी, योग-रत नीचहु-ऊँच महान,
रोटी के बन्धन बँधे दीखैं सकल जहान ! ॥६६॥
सूक्ति बुभुक्षित भक्त की संशय-हीन जनात,
'चारि कौर भीतर परें पीतर-देव लखात !' ॥५७॥
होत, भये, व्है हैं सदा सकै न कोई थाम,
रोटी के बिन विश्व में नर-नाशक संग्राम ![2] ॥५८॥

१—डासन=बिछौना—

लोभै ओढ़न, लोभै डासन !
परमोदर पर यमपुर त्रास न !! —तुलसी ।

२—जब तक एक खाता है और सैकड़ों भूखे मरते हैं, अथवा एक अन्न की अधिकता के कारण उसे जलाता, समुद्र में गिरवाता और आगे के लिये अन्न की पैदावार बन्द कराता है, और उधर लाखों-करोड़ों नर-नारी अन्न के बिना त्राहि-त्राहि करते हैं, तब तक यह कैसे सम्भव है कि संसार में सुख-शान्ति फैले, भले ही धर्म, नर्क, जेल आदि के कल्पित भय दिखा कर लोगों को बहकाया जाय, किन्तु भूखा पेट इन बातों को कब तक सुन सकता है !

किमि दानवता भूख की समझै धनिक-अमीर ?
कबहुँ कि जानै बाँझ हू प्रबल प्रसूती-पीर ?[1] ॥६३॥
प्रबल बुभुक्षा की विथा जानन चहत कराल ?
तौ बलि बेगि बिलोकिये रहि भूखे कछु काल ![2] ॥६४॥
प्रबल विथा जठरागि की जानहिं नीके चार—
दीन-हीन, श्रमकार, त्यों कृषि-जीवी, बेकार ! ॥६५॥
लखे कुलक्षण भूख के विश्वामित्र महान,
खाय अपावन स्वान को माँस, बचाये प्रान !![3] ॥६६॥

---

(१) मसल मशहूर है :—

जिन के पायँ न फटी बिवायी ।
ते किमि जानहिं पीर परायी ?

—अज्ञात कवि ।

(२) "विशालभारत" की मई १९३४ की संख्या में प्रकाशित सम्पादकीय लेख 'कस्मैदेवाय' के विरुद्ध हाय तोबा मचाने वाले कवि तथा लेखक महाशय कुछ दिन भूखे रह कर यदि भूख भवानी की दारुण ज्वाला का अभ्यास पा लेते तो अच्छा होता ! फिर तो शायद 'भूखों का साहित्य' रचने में ही प्राणपण से तत्पर हो जाते ।

(३) जी हाँ, भूख भवानी ऐसी ही शक्ति शालिनी है । इनके द्वारा बड़े २ ऋषि-मुनियों तक को नाकों चने चबाने पड़ते हैं । जिस देश में स्थायीरूप से बुभुक्षा अपना घर कर लेती है—जहाँ सर्व-साधारण की रोटी का मसला निश्चित रूप से हल नहीं हो पाता—वहाँ के अभागे निवासियों के हृदयों से उच्च विचार, सदाचार तथा महत्वाकांक्षाओं का सर्वथा लुप्त हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है । जिस का पेट खाली होता है उसे शुभ-अशुभ, अपना-पराया, पाप-पुण्य अथवा ग्राह्य-अग्राह्य कुछ भी नहीं देख पड़ता । भला जब विश्वामित्र जैसे महर्षि भी जठर की

केहि विधि ज्वाला भूख की सहत किसान कराल ?
घरहिं जमाई लौं जहाँ छाये रहत दुकाल !!¹॥६७॥
वलकल, तृन, तरु-पात कोउ मूल उपारि चवात !
गोवर तें दाने सरे चुनि चुनि कोऊ खात !! ॥६८॥

ज्वाला से जल कर रोटी न पाकर—कुत्ते का मांस खाने को बाध्य हो सकते हैं तब, हम आप सांसारिक मनुष्य किस गिनती में हैं ? भला;

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं।
कहौ तूल केहि लेखे माहीं ?

तुलसी।

(१) अँग्रेज़ों के लिखे इतिहास से ज्ञात होता है कि यद्यपि १८वीं सदी में भारत की दशा बिल्कुल बिगड़ गई थी, तथापि उन सौ वर्षों में केवल चार बार अकाल पड़ा था—सो भी वे अकाल केवल एक प्रदेश में पड़े थे। उन्नीसवीं सदी में धीरे-धीरे अँग्रेजी राज्य के फैलते ही इस देश में देशव्यापी अकालों का डेरा जम गया। अलाउद्दीन खिलजी के समय सन् १२६० में अकाल पड़ा था, तत्पश्चात् १२४३ में दिल्ली तथा उसके आस-पास अकाल पड़ा। फिर २०० वर्ष तक कोई अकाल नहीं पड़ा। परन्तु अँग्रेजी राज्य में सन् १८०१ से १६०० तक भारत में ३१ अकाल पड़े और ३ करोड़ २४ लाख आदमी रोटी के बिना मरे। १८७७से१६०१तक प्रति मिनट२भारतीय लाल'हाय रोटी!!' का चीत्कार करते हुए मर गये !!! इस हृदय विदारक दुर्घटना पर हतभागों को सम्बोधित करते हुए डिग्वी महाशय ने कहा था :—

You have died, you have died uselessly.

अर्थात् "तुम मर गये, तुम अकारथ ही मर गये !!"

"देश की बात" पृ० ७५—७६

बेंचि पुत्र, भ्राता, सुता तनु राखत कोउ दीन !
घूरे की गुठली भखै कोउ शूकर तें छिन !! ॥६९॥
खाय अनेकन विष रहैं चिर निद्रा में सोय !
भूखे बात न गूढ़ यह देखन हू दुख होय !! ॥७०॥

× × × ×

सौ बातन की बात इक बादि करै को तूल—
'है इक रोटी-प्रश्न ही सब प्रश्नन कौ मूल' ॥७१॥

———

हरिजन—

योगिन हू को अति अगम सेवा-धरम महान¹,
नित्य निबाहत नेम सों धनि हरिजन मतिमान! ॥७२॥

× × × ×

सेवा-धरम निबाहि नित करत अपावन पूत!
छूत छुड़ावत जगत की ते किमि भये अछूत? ॥७३॥
'सेवा तें मेवा मिलै' है यह उक्ति उदार।
हम सेवा करि कठिन हू पावहिं गारी-मार!! ॥७४॥
चोरी-जारी नहिं करहिं नहिं नित बैठे खाहिं,
केहि कसूर धौं विप्रजी हम सों सदा घिनाहिं? ॥७५॥
नहिं उपजाये वे मुखन नहिं जाये हम पायँ,²
एकहि मग आये सबहि एक हि मारग जायँ! ॥७६॥

---

(१) सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः
—भर्तृहरि।

(२) यथार्थ में वेदों की वह फिलासफ़ी (?) भी हरिजन भाइयों की तबाही का एक मुख्य कारण है जिस में ब्राह्मणों को परमेश्वर के मुख से उत्पन्न होने के कारण उच्च तथा हरिजनों को उसके पद सम्भूत होने के कारण नीच—अछूत—ठहराया गया है!

'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्' और 'पदभ्यांशूद्रोअजायत' की विषमय विषमता ने ही समाज के एक भाग को उठा कर सबसे ऊँची चोटी पर चढ़ा दिया और दूसरा भाग शताब्दियों तक पतित—पददलित समझा जाता रहा। इस वेद-वाक्य का कितना ही सुधरा हुआ अर्थ

एक भरहिं, घर मलिनता अपर स्वच्छ करि जात,
द्वै महँ कौन अछूत है? नीके निर्णहु तात! ॥७७॥

जननी अरु हरिजनन को नित एकहि व्यापार,
केहि कारन पूजौ प्रथम कहि दूजौ बदकार? ॥७८॥

'श्रमकारी भंगी भलो' 'श्रम बिन बिप्र अछूत'—
कब धौं जग महँ फैलि है यह मत पावन-पूत?' ॥७९॥

× × × ×

क्यों न अभागे हिन्द को बढ़हिं बिपत्ति अकूत?
कोटिन पूत-सपूत जहँ समझे जात अछूत!! ॥८०॥

कब धौं भारतभूमि के व्है हैं पूत सपूत!
कब धौं भय न दिखाइ हैं छूत-छात के भूत!! ॥८१॥

× × × ×

दीजिए—उसे उदारता के रँग में रँगने की कितनी ही चेष्टा कीजिये—किन्तु इस कलुषित मनोवृत्ति को आप कभी मिटा नहीं सकते जो उस में भरी हुई है। प्रत्यक्षरूप से तो हम, सब को उसी विराट् भगवान् (मातृशक्ति) के उदर से उत्पन्न हुआ देख रहे हैं—मुख, बाहु आदि से नहीं—फिर वेदों की यह विषम व्यवस्था क्या अर्थ रखती है?

(1) बड़ा और पूजनीय कौन है? वह, जो समाज की सब से बड़ी सेवा करे, न कि वह जो केवल बड़ी-सी चोटी रख कर और मोटा-सा जनेऊ पहन कर अपने मुँह आप बड़ा बन बैठा हो। वह जमाना अब बीत चुका जब कि इन पाखंडों के द्वारा कोई व्यक्ति जन्म से ही उच्चता और बड़प्पन का ठेकेदार बन जाता था। अब तो परिश्रम, कर्मण्यता तथा सेवा-भाव ही उच्चता के यथार्थ लक्षण समझे जाने चाहिये। और यही सच्चा अछूतोद्धार है।

जब लौं दीनानाथ हैं छुवन न पैहैं पाट !
दीन मोहम्मद होत ही भरि हैं घाट-अघाट !! ॥८२॥

अब लौं दीनदयाल की छुवत न कबहूँ छाँह !
होत डेनियल ही अहो ! बैठारत गहि बाँह !![1] ॥८३॥

× × × ×

हरिजन-हित हरिजन गयो हरजन भयो सहाय,
पापी भोजन-भट्ट, पै रहे लट्ठ बरसाय[2] !! ॥८४॥

हरिजन देखि 'अछूत' तें सजग होउ द्विजराज !
समय पाय व्है है यहै श्रमिकन को सिरताज!! ॥८५॥

चाहै हरिहिं रिझाइबो हरिजन क्यों न रिझाय ?
रीझत ही हरिजनन के हरि रीझैंगे धाय ! ॥८६॥

× × × ×

---

(१) लेखक की दृष्टि में जैसे दीन मोहम्मद और डैनियल हैं वैसे ही दीनानाथ और दीनदयाल भी हैं। इन दोनों दोहों में हिन्दू समाज की अति संकुचित मनोवृत्ति का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

(२) जसीडीह (बिहार) तथा पूना की उन दुर्घटनाओं का स्मरण आते ही हृदय क्षोभ से जल उठता है जिन में विश्ववंद्य महात्मा गांधी पर क्रमशः लाठियों और बम द्वारा घातक आक्रमण किये गये थे, और जिन में सौभाग्य से ही महात्मा जी बालबाल बचे। सुना है, जसीडीह में लाठी बरसाने वाले वे गुमराह भाई थे जो अपने निरंकुश सामाजिक अधिकारों के मद में उन्मत्त होकर हरिजनोद्धार आन्दोलन को फूटी आंखों देखना नहीं चाहते। पूना का बम-काण्ड किस की दिमागी दुर्बलता का प्रत्यक्ष प्रमाण था, यह अभी तक अँधेरे में है।

मूढ़ कहैं अभिमान-वस औरहिं नीच—अछूत !
सिद्ध करहिं निज नीचता दै दै मनहुँ सबूत !! ॥८७॥

काहि अछूत बताइये कहिये काहि सछूत ?
हमरे जानत देश में पैंतिस कोटि अछूत !! ॥८८॥

परदेसिन के हाथ है जिन को भाग्य-विधान,
महा अछूत—कपूत हैं ते भारत-संतान !! ॥८९॥

गरे गुलामी को जुआँ जब लौं धरं सबूत,
कौन कहै नय-न्याय सों 'हम हैं सभ्य—सछूत' ? ॥९०॥

× × × ×

हैं पुतले इक धूलि के सब भारत-सम्भूत,
हम अछूत किमिकै भये किमिकै आप सछूत ? ॥९१॥

कीन्हें छूत-अछूत हू यदपि न चिन्ता भूरि,
अर्थ-विसमता की बिथा सालै वैरिनि मूरि !!' ॥९२॥

---

(१) "छुआछूत के द्वारा उत्पन्न जातीय अपमान यद्यपि हमारे लिए कम दुःखकर नहीं है, तुलसी के शब्दों में;

'यद्यपि जग दारुन दुख नाना,
सब तें कठिन जाति-अपमाना !'

फिर भी शताब्दियों से अभ्यस्त होने के कारण हम अपमान को हम किसी प्रकार सहन भी कर लें, किन्तु आर्थिक विषमताएँ अब हमारा सर्वनाश कर रही हैं। ऊँची जाति वालों के मुकाबले में हम कोई भी उन्नति-मूलक कारोबार—दूकानदारी, सरकारी नौकरी, पूजा-पाठ आदि—नहीं कर सकते। न हमें सेना में स्थान है न पुलिस में। धर्मादि के काम भी अब हम से छीन कर उच्च जातियों ने ले लिये। यहाँ तक कि ठेकरों ने (उच्च जातीय होकर भी) जूतों की मरम्मत, कपड़ों

भरहिं उदर तन ढाँकहीं तिन को, जतन बताव,
अनखाए कहुँ होतु है हरि-पूजन कौ चाव ? ॥६३॥
टटको-स्वादु-सुमांस हू लगत अनीको काय ?
बिन पैसा कहँ पाइये ? बरबस बासो खाय !! ॥६४॥
मारि मारि तुम खात, हम बिन मारो—मरु—खाहिं !
तुम हिंसा-भागी भये हम कहँ दूषण नाहिं !![1] ॥६५॥
अत्याचार-अनीति की ज्वाला जारत प्रान !
बिन बोतल किमि पाइये तेहि तापन तें त्रान ? ॥६६॥
नहिं शिक्षा नहिं सभ्यता निस-दिन काम अकाम !
समुझैं मदिरा-मांस के किमि खोटे परिणाम ? ॥६७॥

× × × ×

सेवा के शुभ मर्म कौ करि नीके निरधार,
गांधी याँचत ईश तें हरिजन-घर अवतार ![2] ॥६८॥

× × × ×

की धुलाई, रँगाई तथा मेहनत-मजूरी के छोटे मोटे काम अपना लिये ! हमारे भाग्य में इन उच्च वर्णाभिमानियों ने केवल यही लिख दिया है कि हम आंखें मूँद कर सर्वदा उनका मल-मूत्र सकेलते रहें, बस !!"

—एक शिक्षित हरिजन के उद्गार

(१) 'अहिंसा परमोधर्मः' के सिद्धान्तानुसार हरिजन की यह स्पष्टोक्ति सम्भवतः अप्रासंगिक न होगी। भला आठ दस रुपये मासिक पाने वाला एक परिवार, जिसमें से दो तीन रुपये मासिक बाबुओं और जमादारों के पेट में समा जाते हों, अपनी मांस-भक्षण की साध पूरी करने के लिये, मुरदार मांस खाने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है ?

(२) सेवा-धर्म के उच्च आदर्शों का यथोचित पालन करने के हेतु ही यदि बापू जी की यह अभिलाषा है तब तो वह सभी को शिरोधार्य होनी

परत न नेकु अछूतपन काहू स्मृति लखाय,
यदि हैं ? जारत ताहि किन दीपशालाका लाय ?[1] ॥९९॥

× × × ×

सम शिक्षा, सम भाव, त्यों मधु बैनन व्यौहार,
असन, वसन, वर वास ही है हरिजन-उद्धार। ॥१००॥

चाहिये, किन्तु यदि इसके द्वारा हरिजनोद्धार अभिप्रेत हो, तो यह उनकी भोली भावना मात्र है। हरिजनों का उद्धार उनकी आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों को दूर करने से ही सम्भव है, न कि उनके यहाँ अवतार लेने—उन्हीं जैसा दीन-हीन बन जाने—से।

(1) सच तो यह है कि स्मृति-ग्रन्थों में कहीं भी अछूतपन का वह उद्धत स्वरूप नहीं है, जो आज हमारे देश में बरता जा रहा है। किन्तु यदि वैसी कोई अप्रयोजनीय बातें उन ग्रन्थों में किसी विकृत मस्तिष्क वाले ने लिख मारी हों, तो युग धर्म के सर्वथा विरुद्ध जान कर क्या उनका विनष्ट कर देना ही श्रेयस्कर न होगा ?

दूसरा शतक

अन्न दाता

जयति जनार्दन, जगत-हित, नायक, दायक, ! गेय !
प्रतिपालक, स्रष्टा, सुधी, संचालक, श्रद्धेय !! ॥१॥
बिश्वम्भर, महि-देव, शिव ग्राम-देव, गुन-धाम !
महा महीपति, धान्य-पति, कृषि-पति, कृषक, ललाम !! ॥२॥
सीस गठा, पग पानहीं, कर हँसिया, रज माथ,
यहि बानक उर-पुर बसौ सदा सुखेती-नाथ ! ॥३॥

× × × ×

---

(१) कोई भी व्यक्ति; चाहे वह अध्यापक हो अथवा डाक्टर, वकील हो अथवा कलेक्टर, पुलिसमैन हो अथवा नौसैनिक, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, गोरा, काला, अथवा लाल, पीला कुछ भी हो, यदि उसके अन्तःकरण में सच्चाई और ईमान्दारी का लेश मात्र भी मौजूद है, तो, वह यह मानने से कदापि नाहीं नहीं कर सकता कि यथार्थ में किसान ही सर्वदा सब के परिपालक रहे हैं और आगे भी रहेंगे ।

एक समय था—वह समय जिसे भारत का स्वर्ण युग कह सकते हैं—जब सर्वसाधारण के हृदयों में किसानों के प्रति सात्विक श्रद्धा तथा अगाद प्रेम की सद्भावनाएं भरी हुई थीं। इसीलिये उनके एक मात्र धंधे (खेती) को 'उतम' की सर्वोच्च उपाधि दी गई थी ! क्या 'उत्तम' खेती का पेशेवर किसान कभी अधम अथवा नीच-निकृष्ट—हो सकता था ?

धन्य कृषक दाता, पिता, धनि दात्री ! कृषि माय,
जिन की कृपा-कटाच्छ तें जग-जीवन सरसाय ।।४।।
सुख-सुविधा सब भाँति की ज्यों सुत को पितु देत,
त्यों तुम तात किसान हे ! राखत हम सों हेत ।।५।।
करौ न तुम कहुँ विश्व कहँ सुख-सौन्दर्य प्रदान,
छिन महँ सुषमा सृष्टि की होय मसान समान ।।६।।

समय का प्रवाह बदला। मनुष्य-समाज में धूर्तता तथा स्वार्थ-परता के भावों ने प्रवेश किया ! परिश्रम तथा कठिन काम करने वालों के प्रति घृणा होने लगी। अन्न का आदर न होकर 'रूप' नारायण का आराधन होने लगा। लोगों ने किसान का पद महान के बदले नगण्य बना डाला !

किन्तु किसान ! ओ निस्वार्थ सेवी किसान ! तूने अपना उच्चतम धन-धान्य (अन्न-फल, दूध-घी तथा रुई-ऊन आदि) निस्संकोच सब को अर्पण कर दिया ! अन्नदाता जो ठहरा !! पालक पिता जो था !!!

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्हीं किसानों की बदौलत भारत संसार के देशों का मुकुट मणि बना था। इन्हीं किसानों ने भारत में दूध दही की नदियाँ बहाई थीं। इन्हीं के घरों से नव-नीत खा-खाकर उस ग्वाले ने गीता की नव-नीति का प्रादुर्भाव किया था। और इन्हीं के विषय में मि० एम० लुई जेकोलियर चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं:—
"ऐ प्राचीन भारतखंड की भूमि, ऐ मानव-जाति की पालिका, ऐ पूजनीया एवं निष्प्राण् पोषिका, नमस्कार है ! नमस्कार है !! तुम्हें शताब्दियों के पाशविक अत्याचार आज तक नष्ट न कर सके ! स्वागत ! ऐ श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञान की जन्मदात्री ! नमस्कार ! हम लोग अपने पाश्चात्य देशों में तुम्हारे भूत काल का समय उपस्थित करें।"

Soil of ancient India ! Cradle of humanity ! hail, hail ! Venerable and efficient nurse whom centuries

कृषक बंधु, त्राता—कृषक सौम्य सखा, , भरतार !
जानि अन्न-दाता—पिता प्रणवौं बारम्बार !! ॥७॥

× × × ×

सुन्यों न देख्यों देव जग अन्नदेव सम आन,
जियत जिआये जासु के मारे मरत जहान ! ॥८॥
अन्नहिं सृजत किसान, सो ताहू तें बड़ देव,
क्यों फिर अछूत किसान के पूजिय देव-अदेव ? ॥९॥

× × × ×

---

of brutal invasions have not yet buried under the dust of oblivion. Hail, fatherland of faith, of love, of poetry and science, may we hail a revival of the past in our western future."

उत्तम खेती—

कर्म-चतुष्टय में लखी गौरव-पूर्ण महान,
उत्तम खेती देखि वह चकित भयो जहान ! ॥१०॥

× × × ×

वे सुख-साज सुराज, वे वैभव बाग-तड़ाग !
वे पशु, वे घर-ग्राम वे, कानन कुंज, पराग ! ॥११॥

वे अनुराग-सुहाग, वे अमृतमय जल-वायु !
वे जीवन, तन, यम-नियम वे संयम, दीर्घायु ! ॥१२॥

ग्राम-वधूटी वे सुघर वे वर कृषक-कुमार !
वे महिषी घृत खानि-सी वे बहु धेनु दुधार ! ॥१३॥

वे आहार-विहार, वे नित नूतन त्यौहार !
वे परिहास-हुलास, वे सत्य सरल व्यौहार ! ॥१४॥

वे पावस बहु शस्यमय वे हेमंत-बंसत !
वे गृहस्थ कर्मठ—सुधी वे मठ-संत-मंहत ! ॥१५॥

× × × ×

वे व्यापक व्यापार बहु वे ऐश्वर्य महान !
वे पर्यटन जहान के हैं अब स्वप्न समान !! ॥१६॥

× × × ×

सुकृति-समुन्नति वह सकल वह कल ग्राम-निकाय !
दीखत काल-कुचाल तें कवि-कल्पित-सी हाय !! ॥१७॥

रहे सकल सुख-साज के साधन—मूल—किसान,
तिनके नासत ही भयो बंटाढार महान !! ॥१८॥

एकहि-साधे सब सधे फूले फले अघाय,
छीज भये तिनको कहौ किन को बीज बचाय ? ॥१९॥

× × × ×

कृषि-जीवी—

सुकृति-समुन्नति लिखि भयी पूत-पुनीत महान !
करन चली अब लेखनी ! पतन-पराजय-गान !! ॥२०॥

× × × ×

जिन दिन देखे वे बिभव बीते सुदिन सुकाल !
अब हैं कृषक मसान के जीवित नर-कंकाल !! ॥२१॥

उत्तम कृषिहिं बताय क्यों करत बृथा उपहास !
कबहुँ न पायों पेट भरि बीते बरस पचास !! ॥२२॥

याहू तें बढ़ि बिश्व महँ ह्वैहै कहुँ अन्याय ?
जो उपजावत अन्न वह मरत अन्न बिनु हाय !![1] ॥२३॥

---

(१) सर हेनरी काटन ने 'न्यू इण्डिया' नामक पुस्तक में लिखा है कि "भारत की भूमि से पैदा होने वाला धन अमेरिका से भी अधिक है।......तथापि भारत से बढ़ कर दरिद्र देश संसार में कहीं नहीं है ! इसका कारण क्या है ? श्रीमान् डिग्बी महोदय सी० आई० ई० के शब्दों में सुनिये :—

"भारत की दरिद्रता के अन्य कारणों में से दो प्रधान कारण ये हैं—पहला–भारत के उद्योग-धंधों का नाश, और दूसरा–भारत का धन बाहर खिंच जाना। हम (अँग्रेज़ों) ने भारत के उद्योग-धंधों का नाश कर दिया है। १८३४–३५ से १८९८ तक(इकानोमिस्ट पत्र के लेखानुसार) हमने भारत से १० अरब रुपये हरण किये हैं। ये रुपये यदि भारत में होते और पाँच रुपये सैकड़े सूद पर किसानों को कर्ज़ दिये

दिग्-परिधान न आन तन पर्ण-निकेत निवास !
योगिन-गति पायी कृषक करि करि नित्य उपास !! ॥२४॥

भूमि शयन चिरकुट वसन भोजन बथुआ-साग !
सोकि मिलै नित नोन-सँग यथा योग्य निज भाग ? ॥२५॥

बीज बयो सोऊ गयो भयो न मन हू धान !
'कहाँ जावँ ? का सों कहौं ? कैसे देउँ लगान ? ॥२६॥

कौन कहै घृत-दूध की मुख छोटे बड़ि बात !
हम कहँ रोटी-रासरस मोहन-भोग लखात !! ॥२७॥

'सर सूखैं पंछी उड़ैं औरे सरन समाहिं'-
हम सम दीन किसान हा ! तजि खेतन कहँ जाहिं ?' ॥२८॥

गये होते तो आज तक इनकी संख्या कम-से-कम पचास अरब हुई होती।"

"Because among other times we had destroyed native industries and besides, have taken from India since 1834-35 (according to a calculation made by that sane and moderate journal, the Economist, in 1898)-more than ten thousand millions of Rupees."

"India on the other hand, has entirely lost her much more than ten thousand millions, this with interest and of circulated in the ordinary way among her people at 5 P. C. interest value only would by this time have been of the value at least of fifty thousand millions of rupees."

(१) सर सूखैं पंछी उड़ैं औरे सरन समाहिं,
मीन दीन बिनु परन की कहु रहीम कहँ जाहिं ?

—रहीम

हाय बिसमता बावरी! करत किती अंधेर!
बेचहिं बत्तिस सेर हम कृय कर बारह सेर!![1] ॥२६॥

काह न दीन्ह्यौं दैव, दै दुख - दारिद - जंजाल?
जिन के प्रबल प्रताप तें तनु त्यागहिं बिनु काल!! ॥३०॥

भूखन - भार सँभारिहैं किमि ये कृशित किसान?
आय गये अब कंठ में जिन दीनन के प्रान!! ॥३१॥

सुनियत कूकुर आप के दूध - जलेबी खाहिं!
हम सब कृपक-मजूर हा! कूकुर हू सम नाहिं!! ॥३२॥

क्यों उपजावत विश्व मैं बिधना व्यर्थ किसान?
देत न आधहु सेर जो प्रति जन नित्य पिसान!![2] ॥३३॥

---

(१) बेचारे किसान कितनी अरक्षित अवस्था में हैं इसका थोड़ा सा अनुमान इस बात से हो जाता है। चैत--कार्तिक के महीनों में लगान और व्याज-बाढ़ी की अदायगी के समय किसान को अपना अन्न ड्योढ़े-दूने भाव पर बेच देना पड़ता है। किन्तु घर के कुठले खाली हो जाने और बाल-बच्चों के भूख से बिलबिलाने पर जब वह कहीं से काढ़-मूस कर अन्न खरीदने जाता है, उस समय अन्न का भाव पहले की अपेक्षा आधा या पौना हो जाता है। इसलिये जिस अन्न को अभी कल उसने २० और २५ सेर प्रति रुपया बेचा था, आज उसी को वह मजबूर होकर ८--१० सेर खरीदता है, क्योंकि अब अन्न का भाव मन्दा हो गया होता है। सहृदय पाठक विचार करें, भला इस अनियमित आदान-प्रदान से किसान को कितना टोटा रहता होगा!

(२) भारत में प्रत्येक आदमी के लिये औसत दर्जे वर्ष भर में (पेट भर खाने के लिये) कम से कम तेरह मन अन्न चाहिये, किन्तु यहाँ के लोगों को ५५ करोड़ मन अन्न का प्रति वर्ष घाटा रहता है! यद्यपि अन्न की उपज इतनी होती है कि वह देश भर के लोगों के लिये काफी हो,

करि श्रम तीसौ-दिन मरत भरत न भूखो पेट !
कहौ कहाँ तें लाइये पटवारी !' तव भेंट ? ॥३४॥
सम्पतिवानन कहँ खुले सव न्यायालय-द्वार ..!
दीन किसानन की न पै कोई सुनत गुहार !! ॥३५॥

परन्तु वह अन्न यहाँ रहने पाये तब न !

अब ज़रा विदेशियों के भोजनों का औसत देखिये; इँगलैण्ड में एक आदमी वर्ष भर में ४०० पौंड गेहूँ, ११६ पौंड मांस, और ४६ पौंड पनीर से पेट भरता है। अर्थात् इँगलैण्ड का प्रत्येक आदमी कम से कम तीन पाव बढ़िया भोजन खाता है, और स्काटलैण्ड का किसान दूध-मक्खन के अतिरिक्त सवा सेर अन्न रोज़ खाता है, और आयलैंण्ड का तो ३–४ सेर तक उड़ा जाता है। जब कि भारत का दुखी किसान मुश्किल से औसतन पाव भर रूखा-सूखा अन्न पाता है।

अब ज़रा दोनों देशों के किसानों की मेहनत का मुकाबला कीजिये। विदेश के किसान अनेक प्रकार के तीव्रगामी यन्त्रों तथा बिजली आदि के बल से चलने वाले इञ्जिनों के द्वारा थोड़े ही परिश्रम से मनमानी फसिल उपजाते और अवकाश के समय में सिनेमा-थियेटर के द्वारा अपना मनोरंजन करते हैं, और इधर हमारे मरे-टूटे भारतीय किसान दिन-दिन भर बैल और भैंसे भूमि खोदते-खोदते अधमरे हो जाते हैं। इस पर भी बेचारों को पेट भर अन्न न मिलने से उनकी क्या गति होती होगी, यह समझना कठिन काम नहीं है।

(१) मुर्दा किसानों का रक्त चूसने के लिये राजतंत्र-वाद के आरम्भिक-काल से ही 'पटवारी' नाम के एक विशेष प्रकार के नर-कीटों की सृष्टि हुई है। किसान के बाल-बच्चों को दो दिन से अन्न के बिना भले ही लंघन हो रहे हों किन्तु द्वार पर आये हुए इन जीवित जमराजजी का कुछ सत-कार करना ही होगा ! अन्यथा अप्रसन्न हो जाने पर अपनी कलम के एक ही इशारे से ये सफ़ेद को स्याह और स्याह को सफ़ेद कर सकते हैं।

'छूट' 'तकावी' आदि हू हैं निरमूल सुधार,
औरहु रीढ़ किसान की तोरहिं ये उपचार !! ॥३६॥

फटी-पुरानी गूदड़ी फूटे बासन तीन,
सो कुरकी करि लै चले साहब कुरक अमीन !! ॥३७॥

× × × ×

सुनत बिदेसन में बने कर के नियम अनूप—
'खाये खरचे तें बचै सो धन है कर-रूप' !' ॥३८॥

प्रबल बुभुक्षा को कटक केतिक करत प्रहार,
तऊ न त्यागत 'खेत' जो धन्य कृषक-श्रमकर ! ॥३९॥

हल के बल जो हल करै पेट - प्रश्न बरिबंड,
वा, किसान की बाहु पै वारौं भट - भुजदण्ड ! ॥४०॥

सुनत किसानन की दशा चले हसंत हसंत !
नहिं जानहिं यहि आगि तें जरि जैहैं सब अंत !! ॥४१॥

कौन कहै भूखन मरहिं दीन कृषक-श्रमकार !
खात न क्या गम के सहित वे नित गारी - मार ? ॥४२॥

---

(१) प्रकृति माता की बनाई हुई धरती पर अपने हाथ-पैर के परिश्रम से अन्नादि उपजाने वाला किसान अपनी उपज का एक भाग इसलिये सरकार को देता है, क्योंकि सरकार के द्वारा उसकी सब प्रकार से सुरक्षा होती है। किन्तु किसी भी दशा में क्या यह न्याय है कि सुरक्षा के रूप में उसका सर्वस्व ही हरण कर लिया जाय ? रूस आदि साम्यवादी देशों में किसान की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के बाद शेष धन ही राजस्व (कर) के रूप में लिया जाता है। और वह भी सात सागर पार बैठे हुए सिविलियनों को पेंशन तथा भत्ते के रूप में न मिल कर जनता के हित में व्यय होता है।

होत अवर्षा की, कबहुँ अति वर्षा की मार !
हरे-हरे सब खेत कहुँ पियरे करत तुषार !![1] ॥४३॥

रक्षक हू भक्षक भये तक्षक लौं डसि जात !
यहि धारन सुख-शान्ति की कौन चलावै बात ?[2] ॥४४॥

तीजे - चौथे पावहूँ कहुँ रोटी अधपेट !
ता पै खटमल-चीलरहु निस-दिन करत चपेट !! ॥४५॥

विषम-वृषादित की तृषा मृषा मरहिं बिनु बारि !
परहिं न कबहूँ पेट, पै सुख की रोटी चारि !! ॥४६॥

× × × ×

जरा रुधिर जठरागि तें बाढ़े नित नव पीर !
आह दई ! तापै जरा !! काँपै कृशित शरीर !! ॥४७॥

---

(१) अमेरिका आदि देशों में अनावृष्टि के समय वहाँ की सरकार कृत्रिम उपायों (बिजली की सहायता) से पानी बरसाती है, इसी प्रकार अतिवृष्टि के समय तोपों द्वारा बादलों को छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है। किन्तु भारत के किसान तो अनाथ ठहरे ! उनका भी कोई धनी धोरी हो तब न !!

(२) 'कमज़ोर की जोरू सब की भौजाई !' यही दशा आज भारत के दीन किसानों की है। कोई ज़रा सी वारदात हुई कि कहलाने वाले रक्षकों का दल गाँव में आ धमका ! किसी के घर से दूध की दुधाँड़ी उठवा ली, कहीं से राब का घड़ा ! कहीं से आटा-दाल चावल आ रहे हैं तो किसी का बकरा काटा जा रहा है ! साथ के बैल-घोड़े आदि अधपके खेतों में छोड़ दिये जाते हैं ! गाँव में श्मशान का-सा सन्नाटा छा जाता है !! कहिये, इन्हीं सब को यदि रक्षक कहना ठीक होगा तो भक्षक किसे कहियेगा ?

करत कसाला वस्त्र बिनु पाला - पगी कुबात !
सूखे हाड़न मैं मनहुँ भाला-सी गड़ि जात !! ॥४८॥

× × × ×

फटे पुराने चीथड़े गहत बनै न मिलाय !
शीत-निवारन-हेतु हा ! कंथा हू न सिलाय !! ॥४६॥
फरे रहैं जूँ - चीलरन भरे रहैं मल - मूत !
लेत बरेठहु यहि डर न बहि जैहैं सब सूत !! ॥५०॥

× × × ×

नहिं सुनात चातक-रटनि नहिं कोकिल की कूक !
चहुँ दिशि हाहाकार है —हा भोजन ! हा भूक !! ॥५१॥

× × × ×

दीन मलीन अधीन ह्वै कब तें करत पुकार !
बन-रोदन भी होत है किन्तु किसान–गुहार !! ॥५२॥
बिकत बयालिस भाव घृत जौ रुपया मन जान,
किन्तु किसानन तें वहै अब लौं लगत लगान !![1] ॥५३॥

---

(१) देखा, क्या ज़बरदस्त अंधेरखाता है ! आज से सात-आठ वर्ष पहले लगान की जितनी रकम किसान को पाँच-सात रुपये मन गेहूँ बेचने से मिल जाती थी, उतनी ही रकम प्राप्त करने के लिये अब उसे दो या ढाई रुपये मन के भाव से पहले की अपेक्षा दूने और ढाई-गुने गेहूँ बेचने पड़ते हैं ! किन्तु अधिक लाये कहाँ से ? यहाँ तो आये दिन अकालों के विकराल शिकंजों में पिसना पड़ता है । एक बात और, सस्तेपन के कारण सरकारी तथा गैर-सरकारी, सभी नौकरों के वेतनों में कमी कर दी गई, किन्तु किसान से लिये जाने वाले लगान में कमी करने की बात शायद माँ-बाप सरकार को याद ही नहीं रही ! वह अभी तक ज्यों का त्यों कायम है ।

प्रतिपालहिं नित भूपतिहिं[1] कृषक-सम्पदा छीन !
चारि उलीचहिं ते मनहुँ जीवन हित पाठीन !! ॥५४॥

कृषक-वधूटिन की दशा को कवि सकै बखान ?
लाज-निवारन हेतु जो नहिं पातीं परिधान !! ॥५५॥

× × × ×

नहिं सुपास नहीं वास भल नहिं भोजन—परिधान !
कृपक-दुराशा देखि जनु त्रासहु चाहै त्रान !! ॥५६॥

जानि उगाही के न जनु साधन अबहुँ अन्यून,[2]
'कच्ची कुरकी' के नये उनये कछु कानून[3] !! ॥५७॥

× × × ×

---

(१) भूपति=ज़मींदार। किसान और सरकार के बीच ज़मींदार बस 'दाल-भात में मूसर चन्द' के समान है, तभी तो भाषा में उसका कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है, और हमें उसके लिये 'भू पति' का प्रयोग करना पड़ा है।

(२) अन्यून=पर्याप्त, काफ़ी।

(३) किसानों के डाँगर-ढोर कुर्क कराने के लिये ज़मींदारों के पास पहले ही काफ़ी कानूनी ताकत थी, उस पर भी अब "कच्ची कुरकी" अथवा, "कुर्क तहसील" नाम के नये कानूनों की रचना हुई है, जिनके द्वारा ज़मींदार को अधिकार मिल गया है कि वह नालिश-फरियाद किये बिना ही, जब चाहे, किसान की जायदाद नीलाम कराकर अपना पावना वसूल करले ! बेचारे किसानों को पता भी नहीं होता और 'कुर्क तहसील' करने वाले जमदूत आकर उनकी आँखों के सामने उनके गाय-बैल-भैंस आदि जो मिला, खोल कर ले जाते हैं, और उसी समय लगान न मिलने पर निकट के मवेशी खाने में बाँध देते हैं, जहाँ

अब तौं शासक-बृंद-उर उपजी नीति महान;
'आपु जियौ अरु और को जीवन देहु जहान' !![1] ॥५८॥

से अन्त में आधे या चौथाई मूल्य पर उन्हें नीलाम कर दिया जाता है। यह सुविधा ज़मींदारों को इसलिये दे दी गयी है ताकि वे बिना किसी विघ्न-बाधा के किसानों का कचूमर निकाल सकें।

(१) "जियो और जीने दो" (Live and let live)

श्रम जीवी—

करत सदा श्रम-शक्ति-बल कलित कला - विस्तार,
भरत भाव भव भूरि भल धन्य सुधी श्रमकार ! ॥५६॥
संचालहिं जे जगत के कार्य सकल श्रम-साध्य,
हमरे जानत श्रमिक ते हैं सब के आराध्य ! ॥६०॥

× × × ×

किन के बल ये पुल विपुल बाँधे वारि अथाह ?
किन के कृत्य - कलाप हैं ये बहु रेल-सुराह ? ॥६१॥
ये बहु दुर्ग दुरुह, ये मठ - मस्जिद - मीनार,
नभ-चुम्बी प्रासाद ये हैं किन के श्रम-सार ? ॥६२॥
अंगुरी दाँतन दाबि जेहि जगत निरिखै आज ?
सम कुतूहल-राज सो किन निरमायो ताज ? ॥६३॥
ये असंख्य कल-कार-घर ये व्यापक व्यापार,
किन के बल संचालहीं ये मुद्रण - आगार ? ॥६४॥

× × × ×

पाण्डु बनाये पाण्डु लिपि पढ़े गढ़ाये डीठ !
जोरहिं अक्षर कौन ये नित्य नवाये पीठ ? ॥६५॥
बजबजात बुँबुआत नित भारत भौन मल-मूत !
कौन सखी के लाल यह ढोवत खोवत छूत ? ॥६६॥

सरे पनारे मल भरे जिन में गिरहिं गँधात !
गंदे नारे कौन ये धोवहिं पैठि प्रभात ? ॥६७॥

डगमगायँ कम्पायँ जहँ सहजहिं पायँ पहार !
अगम अराहन कौन ये ढोवहिं बाहन-भार ? ॥६८॥

(लाखन के वारे करहिं बैठि उसीर-समीर) !
दहैं दुपहरी जेठ की किन के कृशित शरीर ? ॥६९॥

× × × ×

कीन्हें रूप कुरूप यह लीन्हें लरिका चार !
कौन खरी बिपदा भरी दरति दराने दार ? ॥७०॥

छिन पौढ़ी छिन शिशु लखै चढ़ि नौ पोरसा[1] भौन !
ढोवति गारा-ईंट यह सद्य प्रसूता कौन ? ॥७१॥

मारि कछोटा कौन यह ढोटा काँख दबाय !
कोमल हाथन ह्वै रही कल दुर्धर्ष घुमाय ? ॥७२॥

खरी दुपहरी संग पति कूटति बजरी छाँटि !
श्रम की मारी कौन यह बाल सुलावै डाँटि ? ॥७३॥

सह कर्मिन के सुनि सदा कुरुचिपूर्ण परिहास !
रोवति, ढोवति कौन यह बोरन बाँधि कपास ?[2] ॥७४॥

× × × ×

(१) पोरसा=पुरुष की पूरी लम्बाई। बुंदेल खण्ड में मकानों, कुओं आदि की लम्बाई बतलाने के लिये इसी शब्द का प्रयोग होता है। 'पोरसा' में 'पो' का उच्चारण ह्रस्व—"पु" के बराबर होना चाहिये।

(२) भिन्न-भिन्न स्थानों और कल-कारखानों में काम करने वाली हमारी मजदूर-कामिनियों की दुर्दशा का धुँधला सा चित्र इन पाँच दोहों

ऊँच - नीच, खोटे - खरे यावत कार्य - कलाप;
होत, भये, ह्वै हैं सदा किनके पुण्य प्रताप ? ॥७५॥

× × × ×

श्रमिक-श्रमिक ? हाँ हाँ वहे बेंचहिं श्रम अनमोल !
दीन दशा तिन की न क्यों देखहु आँखिन खोल ? ॥७६॥

में दिखलाने की चेष्टा की गयी है। इन्हें पढ़कर और समझकर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जो इनकी दुर्दशा पर आँसू बहाये बिना रह सके। किन्तु यह तो एक साधारण-सी लेखनी से निकले हुए शब्द मात्र हैं। स्त्री-श्रमजीवियों की करुण कथा तो कोई महाकवि ही कह सकता है। हाँ, इनके कार्य-क्षेत्रों—मिलों, कारखानों में जाकर अवश्य ही इनके दुःखों का असली रूप देखा जा सकता है, जहाँ के उजड्ड, अशिक्षित और अनेक शिक्षित-सभ्य मैनेजर भी इनसे कड़ी मेहनत ही नहीं लेते वरन् घिनौनी और अश्लील भाषा में बात-चीत और हँसी मज़ाक तक करते हैं ! इन मिलों और कारखानों के स्त्री-श्रमिकों का जीवन कितना कष्टमय होता है, इसे जानकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। और यह सब होता है चन्द ताँबे के टुकड़ों के लिये !!!

भाव शासक

है कुनीति संग सहज सुख दुख सुनीति के संग,
पूँजीपति - श्रमकार के बैठि विचारहु ढंग ! ॥७७॥

× × × ×

श्रमकारिन कहँ झोंपड़ी बिनु श्रम महल-निवास !
न्याय-नीति को है अहो ! यह केवल परिहास !! ॥७८॥

कहाँ दया ? कहँ धर्म है ? कहाँ दीन-ईमान ?[१]
श्रमिक सदा संकट सहैं करत न कोई कान !! ॥७९॥

---

(१) हैं ! इस शीर्षक को देखकर आप चकराते क्यों हैं ? क्या आप नहीं जानते कि रूस महादेश का शासक आज कौन है ? और सुविस्तृत चीन देश के सम्पूर्ण उत्तरी प्रदेशों पर आज कौन अपनी लाल पताका फहरा रहा है ? यही श्रमजीवी ! इन्हीं दुबले-पतले श्रमजीवियों की बदौलत आज संसार का काया-कल्प होकर एक नये निरूपे युग की सृष्टि होने जा रही है, उस युग की जिस में न कोई राजा होगा न रंक, न पूंजीपति होगा न मजूर, न ब्राह्मण होगा न अछूत ! जिस में सब समान—हाँ हाँ सर्वथा समान—होंगे, खाने-पीने में, पहनने-ओढ़ने में, और रहने-सहने में।

दुनिया के देशों मे साम्राज्यवाद और उसके एक मात्र पोषक पूँजीवाद का खातमा होता जा रहा है, और जहां एकबार इन दोनों 'चोर-चोर मौसेरे भाइयों' का समूल नाश हुआ कि फिर सर्वत्र विशुद्ध जनवाद की तूती बोलेगी।

नहिं कलियुग, दुर्भाग्य नहिं, नहिं कर्मन को फेर !
है कारन दुख-द्वन्द को यह केवल 'अन्धेर' !! ॥८०॥

'टेढ़ जानि शंका सबहिं'[1] है न असाँची बात !
सरल भये दिन रात, हम पावहिं गारी-लात !! ॥८१॥

काहि सिखावत विप्र जी ! व्रत - उपवास - विधान ?
हमरे लेखे तीस दिन एकादसी - समान !! ॥८२॥

केतिक पुण्य - प्रताप तें मानुस - चोला पाय,
काम न आयौ काहु के द्वै रोटी विनु हाय !! ॥८३॥

× × × ×

नरक निगोड़े तें हमहिं का डरपावत आप ?
सहत सदा जठरागि के हम भीषण संताप !![2] ॥८४॥

कावा - कासी त्यागि अब देखहु दीनन - गेह,
दरिद्नरायन ही जहाँ दर्शन देत सदेह !! ॥८५॥

× × × ×

---

(१) टेढ़ जानि संका सब काहू वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू !
—तुलसी।

(२) निम्न लिखित उर्दू पद्य के साँचे में—
वाइज़ा सोज़े जहन्नम से डराता है किसे ?
दाबे फिरते हैं बगल में दिल सा आतिशखाना हम !

मृत्यु रमणि को प्रणयि सम करत •अलिंगन धाय• !
कहँ बुभुक्षा कुट्टनी जब वाके गुन गाय !![1] ॥८६॥

× × × ×

मूरखता अरु फूट को रोपैं बिरवा आप !
हम अपने ही पाप तें सहत सदा संताप !!८७॥
होहिं न विश्व-विभूति क्यों श्रमिकन के आधीन,
एका के यदि भाव की इन मैं रहै कमी न ! ॥८८॥

× × × ×

रोग हमारे को कहौ अन्त कहाँ तें होय ?
साँचो-सही-निदान हू समुझि न पावै कोय ![2] ॥८९॥

---

(१) निम्न लिखित छंद की छाया में—
हैं मृत्यु रमणी पर प्रणयि सम वे अभागे मर रहे !
जब से बुभुक्षा कुट्टनी ने उस प्रिया के गुण कहे !!
—'भारत भारती'।

(२) मजदूर आज दुःखी क्यों हैं ? क्योंकि उनसे अधिक परिश्रम लेकर कम वेतन दिया जाता है। हर हालत में उन्हें उनके बहुमूल्य श्रम के बदले इतना तो अवश्य मिलना ही चाहिये जिस से उनका और उनके पारिवारिक-जनों का भरण-पोषण भली-भाँति हो सके। अस्तु, जब तक उन्हें उनके गुजारे भर को वेतन न दिया जायगा—इतना, जितने से उनका असन, वसन, और वास ठीक तरह पर चल सके, तब तक उनके दुःखों का अंत कैसे हो सकता है ? किन्तु जब तक 'पूँजीवाद' मौजूद है, ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि पूँजीवादी मिल-मालिक अथवा व्यापारी उन की कमाई का अधिकांश आप हड़प कर जाते हैं। अतः पूँजीवाद का अंत और साम्यवाद का प्रचार ही मजदूरों के दुःखों का सच्चा निदान है।

'सुख-सुविधा पावहिं श्रमिक' 'विनु श्रम लहै न कोय',
साँचे देश - सुधार की हैं बस बातैं दोय !' ॥६०॥

सुनियत श्रमिक सँभारहीं आज रूस को राज,
समता की नव नीति लै सरसावहिं सुख-साज ! ॥६१॥

होतो देश - प्रबंध कहुँ श्रमिकन के आधीन,
मारे फिरते फिर न ये हौ कौड़ी के तीन !! ॥६२॥

किते कमीशन वरु बनहिं सृजहिं नवीन 'सुधार',
चह शासन कछु और, जेहि सुख पावहिं श्रमकार ! ॥६३॥

---

(१) भारत के अनेक सम्भ्रान्त नेता आज जिस 'स्वराज्य' की कल्पना किये बैठे हैं—अर्थात् बालिग मताधिकार पर निर्धारित प्रजातन्त्र राज्य—उसके द्वारा यद्यपि कुछ अंशों में राज-सत्तावाद की समाप्ति हो जाती है, किन्तु समाज के भीतर से बड़े-छोटे, अमीर-गरीब की विषम भावना, जो सम्पूर्ण अनर्थों की जननी है—जब तक नष्ट नहीं हो जाती, तब तक सर्वसाधारण का यथार्थ कल्याण कभी सम्भव नहीं है। राज सत्तावाद के हट जाने पर भी धनियों का खूँख्वार पंजा निर्धनियों की पीठ पर पड़ता ही रहेगा, जैसा कि अनेक प्रजासत्तात्मक राज्यों (अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि) में हो रहा है।

अतः सच्चा देश-सुधार तो तभी सम्भव है जब कि साम्राज्य-वाद की समाप्ति के साथ ही साथ उसके छोटे भाई पूँजी—(सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार)—का पूर्णतया अन्त करके समता-नीति के आधार पर समाज का संगठन किया जाय। अन्यथा इन दोनों ('चोर-चोर मौसेरे भाइयों') की मौजूदगी में श्रमजीवियों का हित साधन कभी सम्भव नहीं है।

मृत्यु रमणि को प्रणयि सम करत •अलिंगन धाय• !
कहँ बुभुक्षा कुट्टनी जब वाके गुन गाय !![1] ॥८६॥

× × × ×

मूरखता अरु फूट को रोपैं बिरवा आप !
हम अपने ही पाप तें सहत सदा संताप !!८७॥
होंहिं न विश्व-विभूति क्यों श्रमिकन के आधीन,
एका के यदि भाव की इन में रहै कमी न ! ॥८८॥

× × × ×

रोग हमारे को कहौ अन्त कहाँ तें होय ?
साँचो–सही–निदान हू समुझि न पावै कोय ![2] ॥८९॥

---

(१) निम्न लिखित छंद की छाया में—
हैं मृत्यु रमणी पर प्रणयि सम वे अभागे मर रहे !
जब से बुभुक्षा कुट्टनी ने उस प्रिया के गुण कहे !!
—'भारत भारती'।

(२) मज़दूर आज दुःखी क्यों हैं ? क्योंकि उनसे अधिक परिश्रम लेकर कम वेतन दिया जाता है। हर हालत में उन्हें उनके बहुमूल्य श्रम के बदले इतना तो अवश्य मिलना ही चाहिये जिस से उनका और उनके पारिवारिक-जनों का भरण-पोषण भली-भाँति हो सके। अस्तु, जब तक उन्हें उनके गुज़ारे भर को वेतन न दिया जायगा— इतना, जितने से उनका असन, वसन, और वास ठीक तरह पर चल सके, तब तक उनके दुःखों का अंत कैसे हो सकता है ? किन्तु जब तक 'पूँजीवाद' मौजूद है, ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि पूँजीवादी मिल-मालिक अथवा व्यापारी उन की कमाई का अधिकांश आप हड़प कर जाते हैं। अतः पूँजीवाद का अंत और साम्यवाद का प्रचार ही मज़दूरों के दुःखों का सच्चा निदान है।

'सुख-सुविधा पावहिं श्रमिक' 'बिनु श्रम लहै न कोय',
साँचे देश - सुधार की हैं बस बातें दोय !' ॥६०॥

सुनियत श्रमिक सँभारहीं आज रूस को राज,
समता की नव नीति लै सरसावहिं सुख-साज ! ॥६१॥

होतो देश - प्रबंध कहुँ श्रमिकन के आधीन,
मारे फिरते फिर न ये ह्वै कौड़ी के तीन !! ॥६२॥

किते कमीशन वरु बनहिं सृजहिं नवीन 'सुधार',
वह शासन कछु और, जेहि सुख पावहिं श्रमकार ! ॥६३॥

---

(१) भारत के अनेक सम्भ्रान्त नेता आज जिस 'स्वराज्य' की कल्पना किये बैठे हैं—अर्थात् बालिग मताधिकार पर निर्धारित प्रजा-तन्त्र राज्य—उसके द्वारा यद्यपि कुछ अंशों में राज-सत्तावाद की समाप्ति हो जाती है, किन्तु समाज के भीतर से बड़े-छोटे, अमीर-गरीब की विषम भावना, जो सम्पूर्ण अनर्थों की जननी है—जब तक नष्ट नहीं हो जाती, तब तक सर्वसाधारण का यथार्थ कल्याण कभी सम्भव नहीं है। राज सत्तावाद के हट जाने पर भी धनियों का खूँख्वार पंजा निर्धनियों की पीठ पर पड़ता ही रहेगा, जैसा कि अनेक प्रजासत्तात्मक राज्यों (अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि) में हो रहा है।

अतः सच्चा देश-सुधार तो तभी सम्भव है जब कि साम्राज्य-वाद की समाप्ति के साथ ही साथ उसके छोटे भाई पूँजी—(सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार)—का पूर्णतया अन्त करके समता-नीति के आधार पर समाज का संगठन किया जाय। अन्यथा इन दोनों ('चोर-चोर मौसेरे भाइयों') की मौजूदगी में श्रमजीवियों का हित साधन कभी सम्भव नहीं है।

श्रमिक-राज्य लीन्हें बिना सरै न एकौ काज !
काह करौगे विप्र जी ! लै 'वर्णाश्रम-राज'' ? ॥९४॥

---

(१) भोली-भाली जनता को पाखंड की प्रगाढ़ निद्रा में सुला कर अपना उल्लू सीधा करने वाले पोंगे पंथी पांधा जी ! क्या आप देखते नहीं, आप ही की काली करतूतों से आज सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई है !! "पूजिय विप्र वेद-गुन-हीना, शूद्र न गुन-गन-ज्ञान प्रवीना" (रामायण) की विषम व्यवस्था देकर, सहस्रों साल तक जन-साधारण को असमानता की चक्की में पिसते देख कर भी आप का पाषाण हृदय न पसीजा ! महात्मा गांधी आदि समाज सुधारकों के कामों में रोड़ा अटकाने के लिये, नव जाग्रत युवा वीरों से भयभीत हुए, पूँजीपतियों द्वारा मनमानी आर्थिक सहायता पाकर, आज आप "वर्णाश्रम स्वराज्य-संघ" का ढकोसला रचने चले हैं ! देश में सर्वत्र रोटियों के लाले पड़ रहे हैं। बेचारे मज़दूर-किसान भूख की ज्वाला से संत्रस्त होकर हाय हाय कर रहे हैं। और आप यह उल्टी गंगा बहाने की व्यर्थ चेष्टा करने चले हैं। याद रखिये, आप की कपोल-कल्पित शास्त्र-मर्यादा की कलई अब सब पर खुल चुकी है। यदि आप अब भी अपना रवैय्या न बदलेंगे, तो देश में वह भीषण तूफान उठेगा जिसके प्रवाह में आप सरीखे अमन्द "वर्णाश्रम स्वराज्य-संघियों" का कहीं पता भी न मिलेगा।

सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों में, जब कि भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता को सरलता से भोजन वस्त्र मिल जाता था, कोई और काम न होने के कारण, आप की स्वर्ग-नर्क, मोक्ष और परलोक, भाग्य और पुनर्जन्म आदि की कल्पित आध्यात्मिकतायें खूब फूली-फलीं, और आपने भी "मान न मान, मैं तेरा मेहमान" बन कर खूब गुलछर्रे उड़ाए ! अब वे दिन लद गए जब आप "जिमि द्विज-द्रोह किये कुल नाशा"—(रामायण) कह कर जनता को डराया करते थे।

जब लौं 'श्रम' अरु 'उपज' को होत न साम्य विभाग,
बुझै बुझाये किमि कहो यह अशान्ति की आग ?[1] ॥६५॥

'आप मरे सूझै सरग' सुनि यह उक्ति उदार,
गहत न क्यों निज नाव को अब आपहि पतवार ? ॥६६॥

किमि करतो अन्याय कहुँ कोउ श्रमिकन के साथ ?
शासन - सूत्र सँभारते यदि ये अपने हाथ ! ॥६७॥

× × × ×

सब यज्ञन की यज्ञ यह करत मजूर - किसान,
छुधा-अनल महँ नित्य निज होमत आहुति प्रान !! ॥६८॥

× × × ×

बनत बदौलत जासु के दौलतमन्द — रईस,
तिनकी करुण पुकार पै गोलिन की बकसीस !![2] ॥६९॥

---

(१) सचमुच सारा झगड़ा इसी बात का है कि समाज में 'श्रम' और 'उत्पत्ति' के बटवारे का कोई सुनियम नहीं है। पुराने दकियानूसी तरीके पर, दिन भर कड़ी मेहनत लेकर बेचारा मजदूर शाम को दो-चार आने देकर टरका दिया जाता है, उसके परिश्रम से उत्पन्न 'लाभ' का अति सामान्य भाग उसे मिलता है—शेष सारे का सारा पूंजीवादी मिल मालिक, बिना हाथ-पैर हिलाये, केवल अपनी पूंजी के बल से, आप हड़प लेता है। यह कुव्यवस्था आज इस बीसवीं शताब्दी में भी ज्यों की त्यों कायम है ! फिर भला सर्वसाधारण के सुख-शान्ति की आशा कैसे की जा सकती है।

(२) अभी पिछले दिनों मिल-मालिकों की अन्धाधुन्धी से तंग आकर बम्बई की सूती कपड़े की मिलों के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी थी ! देखते-देखते बम्बई की समस्त सूती कपड़े की मिलों में ताला

बाढ़त श्रमिक-समाज के नित नव दारिद-जाल !
कब ह्वै है धौं विश्व की वह व्यापक हड़ताल?'॥१००॥

× × × ×

पड़ गया और ८० हज़ार श्रमजीवी बेकार हो गये ! गरीबों की 'माई-बाप' सरकार ने भी खुले आम मिल मालिकों का साथ दिया। अनेक बार निहत्थे मज़दूरों पर लाठियाँ और गोलियों की वर्षा की गयी। मज़दूरों की मांगों पर—जो अत्यन्त सीधी और स्वाभाविक थीं—कोई ध्यान न देकर उनकी कमाई के बल पर गुलछर्रे उड़ाने वाले मिल-मालिकों ने अनेक नाजायज़ तरीकों से मज़दूरों को दबा धमकाकर हड़ताल का अन्त कराया ! इस प्रकार इस हड़ताल ने 'रोटी माँगते पत्थर' की कहावत चरितार्थ कर दिखायी !!

(१) हड़ताल श्रमजीवियों का वह महास्त्र है जिसे काटने की शक्ति पूँजीपतियों में नहीं है। इसीलिये साम्यवाद के प्रवर्तक आचार्य कार्ल मार्क्स का यह दावा है कि जब तक संसार भर के श्रमजीवी (मज़दूर-किसान) मिल कर एक साथ एक विश्वव्यापी हड़ताल का आयोजन न करेंगे तब तक पूँजीवाद का अन्त अनिश्चित है। इसी-लिये उनका उपदेश है—

"संसार के श्रमजीवियो ! एक हो जाओ।"

तीसरा शतक

बिसमता

बरसावहिं वैषम्य के वारिद, दारिद - गाज !
कबहुँ कि बेल सुमेल की सरसावहिं सुख-साज ?' ॥१॥

× × × ×

एक अकेले डील हू गाड़हिं लाख - हजार !
विविध कुटुम्बी 'एक, के घूमहिं अन्न - पुकार !! ॥२॥

---

(१) बिसमता कितने जघन्य पापों की जननी है, इसका अनुमान हममें से बहुत कम व्यक्ति करते होंगे। हमारे बीच में आज जो लड़ाई-झगड़े, मार-काट, लूट-खसोट, मुकदमेबाज़ी तथा जालसाज़ी का बाज़ार गर्म है, इसका एकमात्र कारण यही बिसमता राक्षसी है ! बात के तथ्य को न सोचने की हमारी कुछ ऐसी आदतें पड़ गयी हैं कि हम इसका कभी अनुमान भी नहीं करते कि हमारे दुःख-दारिद्र की एक-मात्र कारण यही बिसमता राक्षसी है ! इसीलिये बहुतों को वह स्वाभाविक सी जान पड़ती है, किन्तु ध्यान से देखने पर आपको पता चलेगा कि वह हमारी अपनी बनायी हुई है, ईश्वर, धर्म, पुनर्जन्म अथवा कलियुग आदि का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है । ये बातें तो उन लोगों ने हमें बहकाने के लिये प्रचलित कर रक्खी हैं जो हमारी बेवकूफी से सर्वदा अपना उल्लू सीधा करते रहे हैं । और जिनका पौ बारह इसी में है कि वह बड़े, ऊँचे पूज्य और कुलीन बन कर हमें नीच नालायक समझते रहें !!

एक महा मन्दागि तें मरत अभागो रोय ![1]
एकहिं जड़ जठरागि का औषधि लहै न कोय !! ॥३॥
करि प्रासाद-निवास इक विद्युद्दीप जराय,
एकन की छानी अहो भरि पानी, टपकाय !! ॥४॥
इक फूँकहिं बहु वित्त नित पान - सिगारन माहिं !
एकहिं करि श्रम कठिन हू रोटिन को ढँग नाहिं !! ॥५॥
इक एम०ए०, आचार्य,इक 'कला कुमार'[2] कहाय,
कारो अच्छर भैंस-सो एकहिं किन्तु लखाय !![3] ॥६॥

---

(१) देखते जाइये, 'विसमता' क्या क्या गुल खिला रही है ! क्या यह सच नहीं है कि आज जो इतने अधिक संख्या में वैद्य, हकीम, होमियोपैथ, एलोपैथ, आदि दिखाई पड़ रहे हैं, (जिन्हें औषधि-निर्माण-कला तथा चिकित्सा-विधि सैकड़ों मील बैठे हुए केवल डाक-द्वारा सिखला कर 'डिप्लोमे' दे दिये जाते हैं, और) जिनके बहु-संख्यक साइनबोर्ड शहरों की गन्दी गलियों में लटके दिखाई दे रहे हैं, इसी विसमता द्वारा फूलते फलते हैं ? सेठ जी के पास कोई ऐसा काम तो होता नहीं जिससे उन्हें अपने हाथ-पैर हिलाने पड़ें, उनकी रोटी पच जाय और उनका पेट-पिरामिड पचका रहे । वे तो केवल कभी-कभी मुनीम जी से सलाह-मशविरा मात्र कर लिया करते हैं, बस । उनकी अट्टालिकाएँ, उनकी मोटरकारें तथा उनके कारोबार तो उन श्रमजीवियों की कठिन कमाई का अपहरण मात्र हैं जो अपना खून पसीना एक करके दिन-रात दुःख-दारिद्र की ज्वाला से जलते रहते हैं । फिर भला वे 'मन्दाग्नि' के आखेट क्यों न होंगे ?

(२) कलाकुमार=बेचलर आफ़ आर्ट्स (बी० ए०)

(३) कितने कष्ट तथा लज्जा की बात है ! संसार के असभ्य तथा अर्द्ध-सभ्य देश भी शिक्षा के क्षेत्र में आज हमसे बहुत-बहुत आगे हैं,

इक शतरंजन मैं रमैं मनरंजन के हेत !
एकहिं घोर-कठोर श्रम साँसहु लेन न देत !![1] ॥७॥

धारि विदेसी वस्त्र बहु जगमगात मग एक !
एक महा हिम-त्रास तें रैन बितावत सेंक !! ॥८॥

इक नूतन सारी धरहिं भरि भरि ट्रंक अनेक !
फिरहिं उघारी इक सदा वस्त्र न पावहिं एक !! ॥९॥

एकहिं साबुन - क्रीम बहु चाहिय नित्य नवीन !
काया - धोवन हेतु इक वारि न पावहिं दीन !! ॥१०॥

एकन को भारी भयो वसाधिक्य सों पेट !!
एक अपुष्ट अहार तें होत क्षयादिक - भेंट !! ॥११॥

पढ़त न एकन के तनय कीन्हें यत्न अनेक !
रहत अभागे मूढ़ ह्वै शुल्क बिना सुत एक !![2] ॥१२॥

किन्तु हमारे यहाँ अभी तक निरक्षता का घोर साम्राज्य है ! इसी निरक्षरता की बदौलत हम अभी तक असंख्य रूढ़ियों के जाल में जकड़े हुए हैं ! हमारे मस्तिष्क पर अज्ञान का ऐसा अंधकार छा गया है कि हम अपने हानि-लाभ तथा कर्तव्याकर्तव्य का विचार करने में भी सर्वथा असमर्थ हैं ! यही कारण है कि हमने बड़े-बड़े महारथी नेता भी रूढ़िवाद की गुलामी से हमें मुक्त नहीं कर सकते ।

(१) यदि श्रम के समान विभाग का नियम होता तो दिन भर कठिन परिश्रम करके एक की जान न जाती, और न दूसरे को बेकार होने के कारण मनोरंजन के लिए-शतरंज खेलनी पड़ती ! दोनों मिल-कर, बिना किसी थकावट के, वह काम कर लेते, जिस को अकेले करने से एक बेचारा अधमरा हो जाता है। साथ ही काम के हलकेपन से दोनों का मनोरंजन भी हो जाता।

(२) पाठक ! देखा, कैसी दुःखद व्यवस्था है ! जिस के मस्तिष्क

होत पुष्ट इक पुष्टई कर सेवन हर साल,
एक चिकित्सा - हीन ह्वै त्यागहिं प्रान अकाल !![1] ॥१३॥

बिद्या-बुद्धि बिहीन हू लहत उच्च पद एक ![2]
इत उत बागत व्यर्थ ही ह्वै कृत - विद्य अनेक !! ॥१४॥

वायुयान, जलयान लै भ्रमत एक स्वच्छंद—
ह्वै निचिन्त छकड़ान कौ लहत न एक अनंद !! ॥१५॥

में विद्या की अभिलाषा है, इल्म का अंकुर उग रहा है, वह तो अपनी आर्थिक हीनता के कारण पद नहीं पाता, और जिस का मस्तिष्क मूढ़ता के कीड़ों से भरा हुआ सूखे ऊसर के समान है, उसके लिये शिक्षा के सब साधन उपलब्ध हैं !! विसमता ! तेरा सत्यानाश हो ! तू ही इन अनर्थों की जननी है !

(१) क्या कभी आपने दीन-हीन ग्रामीण जनों की दुर्दशा उस समय देखी है जब ग्रामों में हैजा, प्लेग अथवा चेचक का प्रकोप हुआ हो ? हाय हाय ! बेचारों के लिये न कहीं वैद्य होता है न डाक्टर ! न हस्पताल न औषधालय ! मरें तो अपने भाग और जियें तो अपने !! निकट की तहसील अथवा शहर के हस्पताल तक यदि किसी प्रकार पहुँच भी जायँ तो वहाँ उनके साथ कुत्तों जैसा बरताव होता है ! ज़िला बोर्डों की ओर से कोई नीम हकीम अथवा अधकचरा वैद्य रख भी दिया जाय तो उसकी शान क्या होती है, यह इस दोहे में देखिये;

> वैद्य अनारी निर्दयी, अनुभव - हीन, अशील !
> नारी देखन जात लै, इक मुद्रा प्रति सील !!

(२) जैसे ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, रायबहादुर, खाँ साहब आदि !, ज़रा इनकी तुलना उन शिक्षित युवकों से कीजिये जो बेकारी के कारण मारे-मारे फिर रहे हैं !

करहिं सुचिक्कन केस इक तेल-फुलेल लगाय,
एकन इक वेनी करी नेह न नेकहु पाय !! ॥१६॥
'अर्थकरी विद्या' पढ़े इक साधहिं सब काम,
पत्र पढ़ावन हेतु ही इक वागहिं बहु ग्राम !! ॥१७॥
फिरत अभय वर पायं इक करि दुष्कर्म अकूत !
करि सेवा हू एक नित समझे जात अछूत !! ॥१८॥

---

(१) क्या आप जानना चाहते हैं, यह कौन सज्जन हैं ? वह देखिये महफ़िल लगी हुई है, नन्हींजान तवायफ़ सब का तरन-तारन कर रही हैं ! सुरा-सुन्दरी का दौर-दौरा है ! गिलास पर गिलास खाली हो रहे हैं ! जानते हैं यह राग-रंग किस के यहाँ हो रहा है ? उसके यहाँ, जो हमारी सामाजिक कुरीतियों, मूढ़ विश्वासों और असमानताओं के कारण, आराम से घर बैठे, प्रति वर्ष हजारों-लाखों के वारे-न्यारे करता है, और हमारी अशिक्षा, रूढ़िवाद-तथा वेसमझी का अनुचित लाभ उठाकर बड़ों-बड़ों का 'पूजमान' बना बैठा है ! हाँ हाँ पूजमान, आज इस बीसवीं शताब्दी में ! उसका नाम ? नाम का हमें पता नहीं, उसे सब 'गंगा पुत्र' कहते हैं !!

और यह ? यह पंडित......राम त्रिवेदी हैं ! आप के कनिष्ठ पुत्र स्थानीय शराबखाने के ठेकेदार हैं ! ज्येष्ठ पुत्र का, पाँच वर्ष हुए, शीतला से देहान्त हो चुका है, जिस की स्त्री अभी परसों ही स्थानीय विधवा-आश्रम में दाखिल हुई है ! उसका बयान आश्रम के प्रवेश-रजिस्टर में इस प्रकार दर्ज है—"......मेरे ससुर ने दो बार मेरा गर्भ गिरवा दिया है। अब की बार भी वह गिराने ही वाले थे कि मैं भागकर आश्रम में चली आयी !!"

परन्तु आप पंडित जी का बाल भी बाँका नहीं कर सकते, क्योंकि एक तो उन के पास पर्याप्त पैसा है, और दूसरे वे ऊँचे—त्रिवेदी—

बाल-हीन लखि अंक निज उत झंकै धनवान !
रंक-बाल इत अन्न बिनु तजहिं छु-सातक प्रान !!' ॥१६॥

कुल में उत्पन्न हुये हैं, और 'समरथ को नहिं दोष गोसांई !! '

अब ज़रा उस रमल्ला चमार की दशा भी देखते चलिये । बेचारा मेहनत-मजूरी करके, आप के मृत ढाँगर-ढोर उठा कर, आप के पैरों की रक्षा के लिये जूते बना कर, और आप की घृणित-से-घृणित सेवा करके भी मोटे-झोटे अन्न से टूटी-फूटी झोंपड़ी में गुज़ारा करके समाज के लिये अधिक-से-अधिक उपयोगी होकर भी 'अछूत' समझा जाता है ! क्या आपने कभी ठंडे दिल से सोचा है कि इस अनीति-अत्याचार का कारण क्या है ? यही "विसमता" !!

(१) हा ! कैसी भीषण दुर्व्यवस्था है ! बच्चे राष्ट्र की संतान हैं, यह कहते तो सुना किन्तु राष्ट्र को उनकी रक्षा करते न देखा ! यदि समाज के भीतर से मेरा-तेरा, अपना-पराया, स्वार्थ-परार्थ की दुर्भावनाएँ उठ जातीं, और इनके स्थान पर 'सब सब का' की सद्भावना का जागरण होता, तो आज यह अधोगति क्यों होती ? राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति ये कोटि-कोटि निर्दोष बालक अकाल ही काल कवलित क्यों होते ? रूस आदि साम्यवादी देशों के समान, अपनी ज़िम्मेदारी समझकर, समाज—राष्ट्र—स्वयं इनके पालन-पोषण तथा शिक्षण-संरक्षण का सुप्रबंध करता।

भारत के पूर्व पुरुषों ने तो शायद रत्ती भर भी इस सच्चाई को नहीं समझा कि 'बच्चे राष्ट्र की संतति हैं' अन्यथा आचार्यवर द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामा को दूध के अभाव में चावलों का धोवन न पिलाते, और न अपने सहपाठी द्रुपदराज से कुछ गायें माँगने के लिये विवश होते !

रहैं चिरंतन लौं न क्यों दीन - मलीन - अधीन ?
इक उद्योग - विहीन है है इक साधन - हीन !![1] ॥२०॥

करहिं कठिन श्रम नित्य इक बाँधि पेट श्रमकार !
उपभोगहिं इक चैन सों पूँजीपति — बेकार !! ॥२१॥

एकन के नित स्वान हू दूध - जलेबी खाहिं !
अन्न-बिना सुत एक के 'हा रोटी' रिरिआहिं !! ॥२२॥

---

(१) विषमता के विषमय आधार पर स्थापित समाजों में साधारणतया दो प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं, एक वे जिन की संख्या यद्यपि बहुत ही न्यून होती है, किन्तु जो सामर्थ्यशाली होने के कारण अपने धन, सम्मान तथा बड़प्पन के बल पर 'सब कुछ' कर सकते हैं। दूसरे वे, जो संख्या में उनसे बहुत अधिक होते हुए भी सामर्थ्य-हीन, दीन-दुखी और भुक्खड़ होते हैं। इन में से प्रथम श्रेणी के व्यक्ति, सामर्थ्यवान होते हुए भी, कोई उन्नतिमूलक कार्य, जिस से देश-समाज और जाति का उत्थान हो, इसलिये नहीं करते, क्योंकि उनको अपने स्वार्थ साधन के लिये किसी वस्तु का 'अभाव' ही नहीं होता। किसी ने कभी कोई 'दान' (?) दिया भी, तो उसके बदले वह 'राय बहादुर', 'खान बहादुर' आदि बड़ी-बड़ी पदवियाँ पा जाता है, बस ! समाज का हित-साधन उस के द्वारा बहुत ही कम होता है। अब रहे हमारे भुक्खड़-भाई, सो इनके पास न कोई साधन होता है न साहाय्य। बेचारे दिन-रात 'नोन-तेल' के चक्कर में ही पड़े रहते हैं। परिणाम स्पष्ट है। ऐसा समाज शीघ्र ही अधोगति के गर्त में जा गिरता है, और यदि शीघ्र इस अव्यवस्था—असमानता—का अन्त न किया गया, तो शताब्दियों तक पराधीनता के पैने पहियों से पिसता हुआ महानिर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

एकन के सेवहिं सुतन नित्य अनेकन धाय !
दूध बिना सूखहिं सदा एकन के सुत हाय !! ॥२३॥
असन, बसन, अरु बास इक एकहि तन, मन, प्रान,
इक सेवहिं वैधव्य-व्रत एकहिं भोग-विधान !![1] ॥२४॥

---

(१) केवल राजनैतिक कारणों से ही हम असमानता की चक्की में पिस रहे हों, सो बात नहीं है, वरन् हमारे हिन्दू समाज में अन्याय और अत्याचार का कुंठित कुल्हाड़ा उस से भी अधिक निर्दयतापूर्वक चल रहा है, सो भी बेचारी दुध-मुँही बच्चियों, अजान तरुणियों तथा निर्दूषिता अबलाओं पर ! ब्राह्मणत्व की सड़ी हुई खाल ओढ़ कर सैंतालिस वर्ष का एक बूढ़ा व्यक्ति बारह वर्ष की एक अबोध बालिका से गँठबन्धन करके उसके जीवन का सत्यानाश कर डालने के लिए स्वतन्त्र है, किन्तु उसी घर में बैठी हुई पन्द्रह-सोलह वर्ष की उस की पुत्रबधू पतिहीना होकर दुर्भाग्य को कोसती हुई कामाग्नि की भयानक ज्वाला से जन्म भर जलने के लिये मजबूर की जाती है ! समाज के कर्ता-धर्ता-विधाताओं से, जो अपने को समाज और धर्म के ठेकेदार कह कर सुधारकों के कामों में अड़ङ्गा लगाते फिरते हैं, क्या यह प्रश्न नहीं पूछा जा सकता, कि इन दोनों में से भोग-विधान की किस को आवश्यकता है ? उस बूढ़े खूसट को, जो समाज की छाती पर बैठ कर खुले-आम एक बालिका का यौवन-सुख-सौन्दर्य नष्ट करता है, अथवा उस अभागिनी दीना-हीना तरुणी को, जो अकारण ही अपमान और अत्याचार के कोल्हू में पिस रही है ? परिणाम स्पष्ट है । शहरों में जाकर देख लीजिये ! प्रत्येक छोटे-बड़े शहर में उस के अनुरूप बने हुए अड्डे, चकले, वेश्यालय और (सभ्य भाषा में) कहलाने वाले विधवा आश्रम हमारे इन महापापों की गवाही चिल्ला-चिल्लाकर दे रहे हैं । इन्हीं कुल-बधुओं, और ज़बरदस्ती ब्रह्मचारिणी बनायी हुई इन अभागिनी अबलाओं से, काशी की दाल मंडी, कानपुर का मूल-

एक 'महाबाम्हन' बनो माल हरामी खाय !
करत सुसेवा हू न इक पैसा पूरे पाय ! ॥२४॥

× × × ×

गंज और कलकत्ते का बाज़ार भरा पड़ा है ! और इन्हीं में से हज़ारों प्रतिवर्ष विधर्मियों की संख्या-वृद्धि करती हैं !! आप कहेंगे, क्या इस अव्यवस्था का कोई इलाज नहीं है ? इलाज है, और बहुत ही सरल है, किन्तु जब ये लम्बी नाक वाले देवता जी करने दें तब न ? विधवाएँ बिलखती रहें, अछूत विधर्मी होते जायँ, देश और समाज रसातल को जाय, किन्तु इनकी लम्बी नाक की रक्षा होनी चाहिये, अन्यथा इनके हलुए-माँडे की पूर्ति कैसे हो सकेगी ?

दासता

होहिं न दुख दारुण जगत दीजे नरक - निवास !
कीजे पै न कृपायतन ! पर-आश्रित, पर-दास !![1] ॥२६॥

× × × ×

बहु गुन-गन-विज्ञान-धन बहु अध्यात्म-विचार,
करति अकेली दासता सब कौ बंटाढार !! ॥२७॥

करत दाव-दासत्व किमि गौरव - वन विकराल,
कीट - भृङ्ग को देखिये सम्मुख राखि मिसाल ![2] ॥२८॥

---

(१) निम्नाङ्कित पद्य के आधार पर :—

संसार में हों कष्ट कम तो नर्क में पहुँचाइये !
पर हे दयामय ! दासता के दुःख मत दिखलाइये !!

—अज्ञात कवि ।

(२) भृंगी नाम का कीड़ा अपने कैदी कीड़े के चारों ओर कुछ ऐसा वातावरण पैदा कर देता है कि (सुनते हैं) उसका आकार-प्रकार, रंग-रूप भृंगी जैसा हो जाता है। तुलसीदास जी ने एक चौपाई में इसी भाव को कितने सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—

कीट-भृंग ऐसे उर अंतर, मन-स्वरूप करि देत निरंतर ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आज हम भारतीयों के मन-स्वरूप भी, दासता की दुर्भावना के कारण ऐसे कुण्ठित हो गए हैं कि हमें उसकी दारुण दाहकता का कुछ आभास ही नहीं होता अन्यथा अब तक हम कभी के उससे मुक्त हो गये होते !

दुरित दासता-पास की जब लौं छाप लखाय,
मूढ़-अशिक्षित-'गौर' हू 'काले' 'कुली' बताय !! ॥२६॥

परो रहो नव मास लौं जननी - जठर वृथाहिं—
पर - अधीन लखि देश हू जरत जासु जिय नाहिं !! ॥३०॥

गयो न गुरुता को गरब परि परदेसिन - हाथ !
गुनहिं जराए हू यथा ऐंठ न छोड़े साथ !! ॥३१॥

पर-अधीन, पर-दास ह्वै सहत किते अपमान !¹
तऊ कहत 'हम हैं अहो ! ऋषियों की संतान' ॥३२॥

× × × ×

---

(१) "कौन कहता है कि हम मिट गये ? हम तो आज भी अर्जुन को अमेरिका में, तथा नकुल को सुदूर कैस्पियन झील के किनारे खड़ा हुआ देख रहे हैं। हमारी नसों में जब तक आर्य ऋषियों का रक्त प्रवाहित है—जब तक हमारी सभ्यता, हमारा इतिहास, हमारे वेद-उपनिषद और दर्शन मौजूद हैं—संसार की कोई भी शक्ति हमें मिटा नहीं सकती"। ये हैं वे भाव जो हम बहुधा एक उत्तरदायी संस्था के उत्तरदायित्वशून्य उपदेशकों के मुख से सुना करते हैं। इन में से अनेक मनचले अपना 'ओम्' का झण्डा लिये हुए सारे जगत् को आर्य बनाने की धुन में सात सागर पार के द्वीप द्वीपान्तरों में प्रचारार्थ जाते हैं। निश्चय ही अतीत के काल्पनिक जगत में भटका कर ये वहाँ की जनता को थोड़ी देर के लिये अपने मन्त्रों से मुग्ध कर देते होंगे, किन्तु यथार्थता सब पर रोशन है। सभ्यता वश प्रकट में नहीं तो परोक्ष में अवश्य वहाँ की जनता इनसे यह जानना चाहती होगी कि 'हज़रत ! जब आप यों थे, त्यों थे, बड़े वीर और बहादुर थे, तब आज गुलाम क्यों हैं ? वैदिक मिश्नरी जी ! पहले अपने घर का अंधेरा तो दूर कीजिये, फिर इधर प्रकाश फैलाने आइयेगा !'

विधवा

सुने न जाने जगत के जिन एकहु ब्यौहार,
तिन अबोध तरुनीन क्यों 'बिधवा' कहत गँवार !![1] ॥३५॥

× × × ×

जाति रसातल जाति क्यों मंगल - मूल पजारि ?
'अमंगला' होती न जो तरुनि तपस्विनि नारि !! ॥३६॥

वैधव्यानल जरहिं जहँ प्रति सत सोलह बाल !
उद्धारै तेहि जाति कहँ को माई को लाल ? ॥३७॥

---

(१) अभागे हिन्दू-समाज की दुर्दशा का दारुण दृश्य देखिये ! पुराने पोथों की गर्हित गुलामी में पड़े हुए हमारे समाज के कर्णधार आज तक यह निर्णय न कर सके कि यथार्थ में 'विधवा' कहना किसे चाहिये ! जिन दुधमुँही बच्चियों को स्वप्न में भी यह पता न हो कि 'विवाह' क्या वस्तु है, और पति-पत्नी के बीच क्या क्या वैवाहिक सम्बन्ध हुआ करते हैं, उन्हें भी विधवा विघोषित करके जीवन भर अन्याय-अत्याचार की चक्की में पिसने के लिये बाध्य करना क्या हमारी महान मूर्खता का परिचायक नहीं है ? बाप रे बाप ! ० से लेकर १ वर्ष और ३-४-५ वर्ष तक की अबोध बालिकाएँ आज इस

कोटिन विधवा बाल की आहन के अभिशाप,
लहत न छिन हू छेम हम सहत सदा संताप !! ॥३८॥

× × × ×

यौवन अरु सौन्दर्य को याँचक सकल जहान,
हिन्दू - विधवा - हेतु हैं क्यों ये व्याधि महान ? ॥३९॥

विधना! विधवा करि न क्यों करत कुरूप-कुकाय ?
नित्य दुरावन हू, नयी तरुनाई विकसाय !! ॥४०॥

हिन्दू-समाज ने विधवा बना रक्खी हैं जो अपने आप को संसार की सभ्यता का आदि-स्रोत समझे बैठा है, और जिस के 'वैदिक मिश्नरी' संसार भर में अपनी उच्चता की शेखी बघारते फिरते हैं ! अगले पृष्ठ की तालिका में आप देखेंगे कि अपनी महान मूर्खता वश पुराने पोथों के घनचक्कर बन कर हमने अपनी ही प्यारी दुलारी सुकोमल सहस्रों लाखों ललनाओं को अकारण ही वैधव्य की जंजीरों में जकड़ रक्खा है ! क्या इस हृदय विदारक सूची को देख कर भी कोई हृदय वाला व्यक्ति कह सकता है कि हमारा हिन्दू-समाज अभी तक मूर्खता के गहरे गर्त में नहीं गिरता जा रहा है, और क्या इन्हीं पाप-कलापों के कारण हमारी ३० बहू बेटियाँ नित्य विधर्मियों के यहाँ नहीं जा रही हैं ?

१०५४४९	८३९२०	१२६	१	२२९	२९८	६८
१८३९९८	१४५४४९	२७०	०	५०६	६४३	१२९
५१४३९४	४०४१६६	९२९	३	१८६६	२४७४	५६४
८४६९५९	६६८५०८	१७२०	९	३२९८	४४४२	८०३
१५३७२९०	१२१२३८५	३०१३	१९	६५३३	८४५०	१२३२
१९५४१४०	१५२९६२७	३७३४	१९	९३४०	१०८३५	१४४४
२७९११९५	२१६६४०९	५२२५	२०	१५७७७	१५४७१	१७७५
३०१७४३७	२३३२६७७	५९५७	१५	१९६६७	१६६१७	१९५१
३३१८३४७	२५४६५८२	७१७३	१४	२७५५६	१७९६९	२५०९
३०२३७२७	२३२१९३१	६६१३	१५	२६६६१	१६२४८	२४७०
२७०७२५०	२०८९२३६	६०३२	१२	२७७४८	१४१५२	२९४०
२४०२३२८	१८५७५८५	५३८१	१५	२६२८९	१२५५०	२५४६
११९७४८०	९१७८७३	२९३५	१३	१७५६०	५९२६	१४१०
१८६५७१७	१९८१०६८	४५५०	१७	३२९५९	८१२८	२५०१
२५४९६६६०	१९६८१०६७	५४६७०	१८४	२१६०४८	१३४२४५	२१७६९

यौवन - मद - माती, नयी, कुंदन-सी सुभ देह !
वैधव्यानल जरि भयी माहुर, माटी, खेह !! ॥४१॥

× × × ×

काह करी धौं शासकन हरी सती की चाल !
जरी न एकहि बार, क्यों परी बिषम भव-ज्वाल !! ॥४२॥

× × × ×

माया के लोभन, पिता कियो कसाई - कार !
ब्याही बूढ़े - हाथ, सुनि सिक्कन की झनकार !! ॥४३॥
गमुआरे — बारे — बने करि कारे सित केस !
देखि भवन विधवा बधू नहिं लायो दुख लेस !! ॥४४॥
रही विषय-सुख-भोग की यद्यपि नेकु न चाह !
पितरन - तारन - हेतु ही चले बिवाहन साह[१] !! ॥४५॥

---

(१) सेठ गोबर मल्ल जी की आयु अब ६० के लगभग है। आप की अनेक पत्नियाँ निस्सन्तान मर चुकी हैं ! आप को अब केवल दो बातों की विशेष चिन्ता रहती है, एक यह कि इस अपार धन-राशि का, जो गरीब मजदूर-किसानों का गला काट कर जमा की गई है, उनके मरने पर वारिस कौन होगा ? दूसरी यह कि निस्सन्तान मरने पर वे तथा उन के पुरखे पिण्ड दान पाये बिना स्वर्ग की सीढ़ियों पर कैसे चढ़ सकेंगे ? इन्हीं चिन्ताओं से मुक्त होने के लिये सेठ जी अब बुढ़ापे में किसी कन्या का पाणि पीड़न करने जा रहे हैं !!

छिः ! कितनी घृणास्पद बात है ! गुनाह बे लज्ज़त ! दौलत की बदौलत ये बूढ़े खूसट दिन-दहाड़े बेचारी अबोध बालिकाओं को अत्याचार की चक्की में पीसा करते हैं ! ।विसम व्यवस्था के बल पर रुपये की सबिकता के मद से, इन पाप कर्मों का आयोजन होता है !

आप अनेकन हू किये नहिं मानहिं दुष्कर्म !
होतै विधवा-ब्याह, पै जात रसातल धर्म !! ॥४६॥
'दरसावै नित नाग लौं क्यों न कटावै केस ?'
यों सिखाय विधवा बधुहिं धाय बनावै वेस !![१] ॥४७॥

समाज का कोई धनी धोरी होता तो ललकार कर सेठ जी से कह सकता था—'मेहर्बान ! आप के शरीर में संतान उत्पन्न करने की क्षमता नहीं है, आप इस अनर्थ से बाज़ रहिये !'

(१) दोहे में वर्णित गोरख-धंधे को भली-भाँति समझने के लिये आप को वह दारुण दृश्य स्वयं अपनी ही आँखों से देखने की आवश्यकता है, अन्यथा केवल इस बल हीना लेखनी के सहारे सम्भव है, आप उसकी कटुता का पूरा-पूरा अनुमान न कर सकें। यद्यपि पर्दे की चहारदीवारी आप के मार्ग में बाधक सिद्ध होगी, किन्तु इन 'कुलीन' घरों में काम करने वाले श्रमिक—नाई, कहार, सईस अथवा मेहतर आदि—आप को अन्दर की काली करतूतों का आभास भली-भाँति करवा सकेंगे। उनके द्वारा आप को विदित होगा, कि इन लम्बी नाक वालों के घरों में जहाँ एक ओर ४९ वर्ष की वृद्धा (सास) अपने भूरे—चिट्टे—बालों को स्याही से रँग कर, उन में तेल-फुलेल लगा कर, और अपने झुर्रियाँ पड़े हुए चेहरे पर पाउडर पोत कर, सुन्दरी बनने की व्यर्थ चेष्टा कर रही है, वहीं दूसरी ओर, समाज की क्रूरताओं की शिकार, एक अनिन्द्य सुन्दरी षोडश वर्षीया बाल विधवा, अपना सुन्दर सुचिक्कन केश-दाम, बलात् ब्रह्मचारिणी बनाने में बाधक समझकर, कटवाने का सदुपदेश पा रही है ! उस का रूप-यौवन, उस का सुख-सौन्दर्य और उसका आमोद-प्रमोद तो (समाज की समझ में) उस अपरिचित व्यक्ति के साथ सर्वदा के लिए लुप्त हो गया है जिसे उस की अज्ञानता में ही उसका पति बना दिया गया था, इसलिए उसे इन काले-काले भौंराले बालों की अब क्या आवश्यकता है !! प्रकृति

यहि डर विधवा को मनहुँ करत विवाह न आन—
'दाल मंडई'[1] देश की ह्वै जैहैं बीरान !! ॥४८॥
भागहिं नीचन-संग बरु भ्रूण गिरावहिं क्रूर !
ब्याह भये, पै होतु है धर्म सनातन चूर !! ॥४९॥

× × × ×

लखीं सम्रृतियाँ नर-रचीं नारि-पक्ष कहँ पाय ?
न्याय-निबेरो है यहै सोधहिं उभय 'बनाय !'[2] ॥५०॥

का अवश्यम्भावी विधान—उन्नति और परिवर्तन, सृजन और संवर्धन कलानिधि कामदेव की प्रबल प्रेरणा से प्रस्फुटित होने वाला सृष्टि-संचालन, भले ही रुक जाय, किन्तु बाबा आदम के समय में बनाया हुआ हमारी सड़ी-गली समाज का निरंकुश विधान—विधवा-विवाह-निषेध—भला कैसे रुक सकता है ?

(१) ' दाल मंडी''—पाप नाशिनी काशी का वह प्रसिद्ध मोहल्ला, जहाँ वर्तमान अव्यवस्थित समाज की क्रूरताओं की शिकार हमारी बहिन बेटियाँ, अपनी मान-मर्यादा की बलि देकर, वेश्यावृत्ति करके, धर्म तथा समाज का मुख उज्वल करती हैं !!

(२) यों तो "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ" की दशाओं में स्मृतिकारों ने "पतिरन्यो विधीयते" की व्यवस्था की हुई है, अर्थात् यदि किसी स्त्री का एक पति नष्ट हो गया हो, मर गया हो, संन्यासी, नपुंसक अथवा पतित हो गया हो। तो वह अन्य पुरुष को अपना पति बना सकती है—किन्तु यदि ढोंगी समाज के बहिरे कानों में यह बात नहीं सुनाई देती—वह इसे अशास्त्रीय और प्रक्षिप्त समझता है, तो स्त्री-स्वातंत्र्य के इस उन्नत युग में कोटि-कोटि नारी-रत्नों का सर्वनाश करके देश,समाज, और जाति को रसातल पहुँचाने की अपेक्षा क्या यह उचित न होगा कि स्मृति-ग्रंथों का पुनः संशोधन करके,

विद्वान् तथा देश-काल मर्मज्ञ स्त्री और पुरुष मिल कर, अब ऐसे नियम निर्धारित करें जिन के द्वारा दोनों का कल्याण सम्भव हो ? अपने सामाजिक रीति-रिवाजों का संशोधन और नव-निर्माण न नयी बात है न अनुचित। समाज के उत्तरदाता सदा से ऐसा करते आये हैं; और सदा करते रहेंगे। अन्यथा वे, जिन के हाथों में समाज की बागडोर है, कान खोल कर सुन लें, कि वह दिन अब दूर नहीं है जब कि सभ्यता की डींग हाँकने वाले इस हिन्दू समाज के अवशेष, देश के अजायबघरों और पोथियों के सड़े-गले पन्नों में ही रह जायँगे !

बेकार—

लज्जा नहिं संकोच नहिं पौरुष हीन न गात,[1]
तदपि न पावत काम कोउ उमिरि अकारथ जात !! ॥५१॥

बनि बी० ए० बागहिं बृथा करि धन बाराबाट !
धोबी के से कूकुरा घर हीं रहे न घाट !! ॥५२॥

व्याधि न वैरिनि विश्व महँ बेकारी सम आन !
है बेकार मनुष्य कौ जीवन स्वान समान !! ॥५३॥

× × × ×

---

(१) आये दिन अख़बारों में छपने वाली बेकारों की कष्ट-कथाएँ इस बात की शाखी हैं कि बेकारी इतनी भयानक बला है ! कोई गले में रस्सी बाँध कर मर रहा है, तो कोई हलाहल विष खा कर प्राणान्त कर रहा है ! किसी ने रेल की पटरी पर लेट कर प्राण दिये हैं, तो किसी ने कुओं में कूद कर आत्म-हत्या की है ! किन्तु इन मरने वालों से भी बुरी अवस्था उन जीने वालों की है, जिन को काम-काज के अभाव में, बेकारी के कुचक्र में पड़ कर, करने और अन करने, सभी काम करने पड़ते हैं ! अभी पिछले दिनों पंजाब के किसी पुलीस-केन्द्र में कानिस्टेबलों की भर्ती के समय देखा गया तो उम्मेदवारों में बीसियों एम० ए०, बी० ए० और सैकड़ों मैट्रिक पास मौजूद थे ! भर्ती की शर्त सुना है, ४ मील की दौड़ निश्चित की गयी थी ! अवश्य ही बेचारे ग्रेजुएटों ने भी इस लम्बी दौड़ में भाग लेकर अपनी क़िस्मत आजमाई की होगी, और मुक़ाबले में हार जाने पर अपने कालेज के अधिकारियों को कोसा होगा, जिन्हों ने उन्हें लम्बी दौड़ लगाने के अभ्यासी न बना कर साहित्य, दर्शन, विज्ञान, अर्थ-शास्त्र अथवा इतिहास में पारङ्गत करके बेकार बना दिया है !

दृष्टि गयी, दौलत गयी आयु भयी बेकार !
या शिक्षित बेकार कौ है इक मृत्यु-अधार !! ॥५४॥
द्रव्य-हीन, तन-छीन, पै संतति नित्य नवीन !
ता शिक्षित सम दीन को जो जग कार्य-विहीन !![1] ॥५५॥

× × × ×

निकट बिठायो नेह सों करि केतिक सतकार !
मौन चल्यो पुनि मौन ह्वै जब जान्यो बेकार !! ॥५६॥
सनमान्यो बैठारि, पुनि बात न बूझी आज !
ते तब कारज-लीन लखि ते अब जानि अकाज !![2] ॥५७॥

× × × ×

शान्ति-सुकृति-सौरभ कहाँ? कहँ साँचो सुख चाव ?
युवा-शक्ति-कानन दह्यो बेकारी-दुख-दाव !! ॥५८॥

× × × ×

---

(१) कर्म-हीनों--बेकारों---की दुर्दशा तुलसी के शब्दों में सुनिये :---

सकल पदारथ हैं जग माहीं---
कर्म-हीन नर पावत नाहीं !!

रामायण ।

(२) घर-घर माँगत टूक पुनि, भूपति पूजे पाय !
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम-सहाय !!

तुलसी सतसई ।

यहाँ 'राम-सहाय' के स्थान में 'काम-सहाय' अधिक उपयुक्त जान पड़ता है ।

कीन्ह कठिन आराधना तन-मन-धन सब दीन्ह !
करि शिक्षहिं संतुष्ट हम बेकारी - बर लीन्ह !! ॥५६॥

बेकारी की व्याधि तें अजहुँ न पायो त्रान !
व्यर्थ सिरानो जात हा ! जोबन, जीवन, प्रान !! ॥६०॥

कह्यो पुलकि सुनि साल को सश्रम कारागार—
'हे हरि ! आजु हटाइहौं बेकारी - दुख - भार' !! ॥६१॥

गुनत यहै बन्दी भयो सुनत मुक्ति बेहाल—
'बहुरौ हाय ! 'पजारिहै बेकारी-दुख-ज्वाल' !!![1] ॥६२॥

× × × ×

पाय सुशिक्षा वरु बनै विद्या - बुद्धि - निधान,
कर्म हीन मन जानिये दैत्य - दुकान महान ![2] ॥६३॥

---

(१) अत्युक्ति नहीं सच्ची घटना है ! मेरठ केस वाले कामरेड केदारनाथ सहगल ने उस दिन बेकारों की एक सभा में भाषण देते हुए उस अभागे बेकार की लोमहर्षक कहानी सुनायी थी, जो जेल से छूटते समय इस लिये व्याकुल हो उठा था कि जेल से बाहर आकर उसे बेकारी से फिर भीषण संग्राम करना पड़ेगा ! और जो, रिहा होने के कुछ ही दिन बाद, किसी दुकान से शायद रोटी चोराने पर; फिर जेल पहुँच गया था !!

(२) अंग्रेजी की यह कहावत—'बेकार दिमाग शैतान की कार्य-भूमि है' (An empty mind is the devils work-shop) बेकारों द्वारा होने वाले उन अपराधों का कैसा स्पष्ट विवेचन करती है जिन के लिए आये दिन सरकार को नये-नये कैम्प-जेलों का निर्माण करना पड़ता है। उनके स्थान में यदि कोई कल-कारखाने खोले जायँ तो अपराध भी न हों और कुछ आर्थिक लाभ भी हो जाय ! किन्तु करे कौन ?

नित नूतन अपराध की जननी जानि, सुजान—
कहत सदा, 'बेकार तें भलि बेगार महान' ! ॥६४॥

नित बेकारी - व्याधि तें बढ़ति अशान्ति अघाय !
प्रजलित होति दवागि ज्यों प्रबल वायु-बल पाय !! ॥६५॥

शान्ति-सुरक्षा को सुगुन छिन - छिन हीनो होय !
बेकारी अरु भूख के काटहिं मूषक दोय !![1] ॥६६॥

× × × ×

शोषक शासकवर्ग सों कौन कहै समझाय,
बेकारी की व्याधि कहुँ निष्कासन तें जाय ? ॥६७॥

सुन्यों आज इँग्लैण्ड महँ है कानून उदार—
'दै भत्ता बेकार कहँ प्रतिपालै सरकार।' ॥६८॥

भूखे भारत पै सु क्यों नियम न लागू होय ?
कैसें एकहि आँखि तें द्वै विधि देखै कोय ? ॥६९॥

× × × ×

---

(१) एक ओर वे शिक्षित बेकार हैं जो अपना तन, मन, धन—सर्वस्व—शिक्षा देवी की आराधना में अर्पण कर चुके हैं ! दूसरी ओर वे कोटानुकोटि अशिक्षित भुक्खड़ हैं जिन का पापी पेट सेर में फेर खाने को तैयार नहीं है ! भला इन दो-दो प्रकार के अशान्तिकारकों के रहते हुए समाज में शान्ति और सुव्यवस्था का स्वप्न देखना क्या केवल दुराशा मात्र नहीं है ?

है जब लौं "सम्पत्ति" पै व्यक्तिक अधिकार,[1]
घटै घटाए किमि कहौ बेकारी - दुख - भार ? ॥७०॥

---

(१) संसार में असन-बसन और बास की सामग्री इतने प्रचुर परिमाण में मौजूद है जिस से सारा संसार खा-पी और पहन कर आराम से रह सकता है, शर्त केवल यह है कि उस (सामग्री) पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न रहे—वह सार्वजनिक (राष्ट्र की) उपभोग्य वस्तु समझी जाय। अन्यथा जब तक समाज में इन करोड़-पतियों—धन कुबेरों—का अस्तित्व है, पूरी तरह पर बेकारी का दूर होना दुराशा मात्र है। हाँ, उस में एक सीमा तक सुधार अवश्य हो सकता है।

'नरम' 'गरम' केतिक फिरहिं केतिक करहिं 'सुधार'
कष्ट किसानन के हरहिं सो साँचे सरदार ! ॥७१॥

× × × ×

'दरिद्रान भरु कुन्ति-सुत' है गीता कौ ज्ञान ![1]
दरिद किसान समान है को भारत में आन ? ॥७२॥

बिलपहिं भूखन-भार इक याँचहिं भूपन भूरि !
अर्थ-विसमता की विथा होति न जब लौं दूरि !! ॥७३॥

खनत भूमि भरि द्यौस, पै पावत पैसा बीस !
बैठि मंच सरपंच, क्यों लेत रुपैया तीस ?[2] ॥७४॥

× × × ×

---

(१) भगवान् कृष्ण जी कहते हैं—

दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥

—गीता।

(२) हा हन्त ! कैसी भीषण विषमता है ! न्याय-नीति का कैसा दारुण उपहास है ! शारीरिक श्रम की कितनी बेकदरी है ! माना कि विद्या एक बड़ी ऊँची चीज़ है, किन्तु शारीरिक श्रम, जो कि 'विधाता की सब से बड़ी रचना 'मनुष्य-शरीर' मे ही सम्भव है—क्या उस से भी कहीं अधिक कीमती चीज़ नहीं है ? फिर शारीरिक श्रम का पुरस्कार इतना कम क्यों है ? कैसे दुःख और अन्याय की बात है कि सुबह से शाम तक कठोर शारीरिक श्रम करने वालों को तो इतना

भरे भूरि दारुन दुखन धूरि धूसरित गात !
दरिदनारायन की मनहुँ सतनु सवारी जात !!!।।७५।।

कबहुँ दूसरे तीसरे चौथे कबहुँ उपास,
लै आवत हौं छोलि कै द्वे आना की घास !![1] ।।७६।।

× × × ×

इत सालत नित ब्याज, उत घालत प्रान लगान !
द्वै पाटन के बीच किमि सावित कढ़ै किसान ? ।।७७।।

धन-वैभव - कुल - शील तें करत सदा सनमान !
समझौ किन्तु किसान के श्रम कौ मान महा न !! ।।७८।।

× × × ×

विधना वेगि बनाव रे ! पेटहु पीठ समान !
सहे जात जठरागि के अब दुख-द्वंद महा न !! ।।७९।।

कृशित किसानन की अहो ! आहन के अभिशाप,
रकत - रँगे देखन लगे अम्बर डम्बर आप !! ।।८०।।

कम वेतन मिलता है कि उनका पेट-पालन भी नहीं हो पाता, किन्तु आराम से पंखे की हवा में कुर्सियों पर बैठ कर कलम चलाने वाले उन से सैकड़ों हजारों गुना पाते हैं ! जिन के हृदय है वे उस पर हाथ रख कर सोचें कि क्या यह घोर अन्याय नहीं है ?

(१) दीन-हीन मजदूर-किसानों की रोजान आमदनी का अन्दाज कीजिये, और इस (आमदनी) का मिलान उन श्रीमानों की आमदनी से कीजिये ! देखिये कितना ज़मीन-आसमान का अन्तर है ! यद्यपि कमाई सब की सब इन्हीं की है, लेकिन आनन्द और रँग-रेलियाँ वे कर रहे हैं !

सन्नहुँ न बीघा ऊपजो बीते बारह साल !
समन इजाफ़ा-मिस तऊ काल पठायो काल !! ॥८१॥

× × × ×

देखत मैली धोवती जियरा जरि जरि जात !
रहब उघारे ही भलो याहि सुधारे गात !! ॥८२॥

गुनवानन कहँ सब सुलभ सब दिन सब ही ठाँवँ,
निर्बल - निगुन किसान को कहँ ठिकान तजि गाँवँ ? ॥८३॥

कोउ शास्त्री-आचार्य, कोउ 'वाचस्पति', 'वागीस',
हमहिं दई निब फार-सी होल्डर हरी हरीस !! ॥८४॥

किन की पूजा ? कौन जाप ? कब सुमिरौं भगवान ?
आठ पहर चौंसठ घरी ध्यावत 'ब्याज-लगान'!! ॥८५॥

शक्ति गयी, सम्पति गयी भयी हानि पर हानि !
सच्चरित्र को नाश, पै दीखै दुख की खानि !![1] ॥८६॥

× × × ×

---

(१) पराधीन और भुक्खड़ बन कर भारत ने अपनी जो सब से बड़ी हानि की है, वह है उस के सदाचार का सत्यानाश ! जिन भारतीयों का चरित्र किसी समय आदर्श के उच्च शिखर पर विराजमान था, गरीबी और निरक्षरता ने उन को आज छल-प्रपंच, मुकदमेबाजी, जुवा-चोर और व्यभिचार आदि के भीषण सामाजिक रोगों में जकड़ दिया है ! (तभी तो मिस मेयो जैसी छिछोरी छोकरियाँ भी हमें चरित्रहीन कहने का दुस्साहस कर सकी हैं !) कहाँ वे दिन जब घर के द्वार पर ताले नहीं लगते थे, और कहाँ ये दुर्दिन, जब चार पैसे लेकर किसी गाँव में निश्चिन्तता से एक रात बिताना दुश्वार हो रहा है ! स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ने "Moral Poverty of India

चौथा शतक

महाभारत

धनि धनि योगेश्वर हरे ! धनि गीता - गुन-ग्राम !
बंधु-बंधु, पितु - पुत्र कौ उपदेश्यो संग्राम !![1] ॥१॥

महिमा गीता - ज्ञान की यदपि न आँकी जाय,
झाँकी बंधु - विरोध की पै प्रत्यक्ष लखाय !! ॥२॥

बंधु - बैर - प्राधान्य ही देखहिं गीता - ज्ञान !
'अनासक्ति-विज्ञान' किमि समझैं मंद किसान ? ॥३॥

× × × ×

धर्मराज से सत्य - प्रिय अर्जुन से मतिमान !
जर-जमीन-जन-हेतु हा ! जूझि भये म्रियमान !! ॥४॥

---

(१) हा ! बंधुओं के ही करों से बंधु गण मारे गये !
हा ! तात से पितु शिष्य से गुरु शीघ्र संहारे गये !!
—मैथिलीशरण गुप्त ।

लख्यो प्रजा - पालक परम सुधी सुयोधन राज !¹
सज्यो साज गृह - युद्ध को फिर क्यों कृष्ण अकाज ?॥५॥

× × × ×

---

(१) दुर्योधन की राज्य-व्यवस्था का वर्णन करता हुआ वनेचर युधिष्ठिर से कहता है,

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलैरकृष्टपच्या इव शस्यसंपदः ।
वितन्वति क्षेममदेव मातृकाश्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति ॥
किरातार्जुनीय सर्ग १, श्लोक १७

अर्थात्—"दुर्योधन के राज्य में (सम्पूर्ण सुविधाएँ प्राप्त होने के कारण) कृषकवृन्द विना परिश्रम के ही—सरलता और सुखपूर्वक समस्त शस्य-सम्पदा—धन-धान्य—उत्पन्न करते हैं। सिंचाई का तो ऐसा सुन्दर प्रबन्ध है, कि चारों ओर हरे-भरे खेत लहलहाते दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार चिर-काल से कुरु-देश उन्नति को प्राप्त हो रहा है।"

इस अवतरण से पाठकों को यह निश्चय करने में कोई कठिनाई न होगी कि जहाँ तक प्रजा के हितचिन्तन—सुख-सुविधा तथा शान्ति और सुव्यवस्था—का सम्बन्ध है, दुर्योधन का शासन एक आदर्श शासन था। ऐसी दशा में, लेखक के अपने मतानुसार, भगवान् कृष्ण का युद्धायोजन अकारण ही घोर अशान्ति का कारण सिद्ध हुआ, जिसके द्वारा राज-वंश के सहस्रों-लाखों वीरों का प्राण-नाश होने के अतिरिक्त कोटि-कोटि प्रजाजनों—मजदूर-किसानों—की सुख-शान्ति में चिर-कालीन बाधा उपस्थित हुई ! और जिस के कारण हमारी जातीय एकता का बंधन टूट गया और देश में क्षात्र शक्ति के अभाव से हम पराधीनता के गहरे गर्त में जा गिरे !

जानत हू अंजाम क्यों कोटिन सुभट कटाय ?
रचा करी 'सुकीर्ति' की देश पताल पठाय !![1] ॥६॥

× × × ×

---

(१) 'सुकीर्ति-रचा' का यह राज रोग महाभारत के पश्चात् इतनी तीव्रता से बढ़ने लगा कि अन्त में उसने विदेशियों को बुला कर ही छोड़ा ! पृथ्वीराज का पराजय क्या कभी सम्भव था यदि उस का मौसेरा भाई जयचंद अपनी कीर्ति-रचा के लिये मोहम्मद गोरी की शरण में न जाता ? 'क्षत्रिय' था न ? क्षत्रिय का धर्म ही (गीता के सिद्धान्तानुसार) यह है कि उसे देश, समाज, और जाति—नहीं नहीं सर्वस्व—भी खोकर क्षात्र धर्म सुकीर्ति—की रचा करनी ही चाहिये, भले ही विपक्ष में उस के गुरु, चाचा, पिता-पितामह और बन्धु-बान्धव शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित खड़े दिखाई दे रहे हों ! भले ही उसे आपस के कुछ मतभेदों के कारण—अनिच्छापूर्वक ही सही—उन का वध करना पड़े, किन्तु ऐसे समय में भी युद्ध से (नहीं, गृह-युद्ध से) पराङ्मुख होना अक्षम्य अपराध—कायरता, हिजड़ापन—है !!

खूब ! गीता की इसी फिलासफी ने चिरकाल से यहाँ गृह-युद्ध की ज्वाला[1] भड़का कर भारत को गारत कर रक्खा है ? गीता की इस दुखदाई नीति का संक्षिप्त सार बाबू मैथिलीशरण जी के शब्दों में सुनिये,

> निश्चेष्ट होकर बैठ रहना ही महा दुष्कर्म है,
> न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दंड देना धर्म है !!

बहुत ठीक ! इस बंधु-विरोधी 'धर्म' से ज़रा आपस में लड़ने भिड़ने का अभ्यास तो होगा; रियाज़ तो बनी रहेगी !!

गीताकार ने इस 'धर्म' का फतवा भगवान कृष्ण के मुख से

भयो महाभारत महा हानि - ह्रास को हेतु !
अथयो मेल - मिलाप-रवि उदयो विग्रह - केतु !![1] ॥७॥
महासमर के पूर्व जो सके न आँखि उठाय,
लखि मसान-सम गीध-ज्यों चढ़े विदेशी धाय ![2] ॥८॥

× × × ×

दिखवा कर—उसे हमारा 'सनातन धर्म' बना कर—देश का और भी भारी अहितसाधन किया है !

भगवान कृष्ण जी कहते हैं—

अथ चेत्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥

अर्थात्—यदि तू इस धर्म युक्त (?) संग्राम को नहीं करेगा, तो स्वधर्म और स्वकीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा !

—गीता अ० २ श्लो० ३३।

(१) इतिहास के विद्वानों का कथन है कि भारत के जन-समुदाय में जो आज असंख्य कुरीतियाँ तथा पारस्परिक विरोध की दुर्भावनाएँ जागृत हो रही हैं उन सब का आदिमूल कारण यही महाभारत है ! राजनैतिक पराधीनता का सेहरा तो हिन्दुओं ने महाभारत के पश्चात् ऐसी मजबूती से बाँधा कि बीसियों शताब्दियाँ बीत जाने पर भी वह अभी तक गुलामी से मुक्त न हो सके ! कविवर मैथिलीशरण जी ने ठीक ही कहा है—

"भारत न दुर्दिन देखता मचता महाभारत न जो !"

(२) महाभारत से पूर्व किसी भी विदेशी शक्ति का भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ ! शक, सीथियन, हूण, अरब और यूनानियों आदि के हमले तथा मुसलमानों की चढ़ाइयाँ महाभारत के पश्चात् ही हुई हैं !

बंधु-विरोधिनि बेलि तैं उपजे फल जयचंद !
बोरी लाज--समाज हू मिलि गोरी मति मंद !!' ॥६॥

(१) एक ओर हम गीता-ज्ञान के अनुसार परस्पर बंधु-विरोध की शिक्षा पाते हैं, और दूसरी ओर हम जयचंद की उस भारी भूल के लिये उसे देश-द्रोही आदि कह कर धिक्कारते हैं जो उसने पृथ्वीराज के मुकाबले में मुहम्मद गोरी से मिलकर की थी ! सच तो यह है कि इस में जयचंद का दोष नहीं था, वरन् उस मनोवृत्ति का दोष था जो ऐसी कुशिक्षाओं द्वारा अनजाने ही हमारे हृदयों में घर किये बैठी है ! क्षत्रिय का धर्म जब स्वकीर्ति-रक्षार्थ लड़ना और अपने भाई तक से अन्याय का बदला लेना है, तब बेचारे जयचंद का गोरी से मिलकर भारत की स्वाधीनता पर हमला करना अनुचित कैसे हुआ ? महात्मा गांधी जैसे सार्वभौम विद्वान् क्या इन्हीं शंकाओं के कारण गीता (महाभारत) आदि को कल्पित साहित्य बतलाते हैं ?

कुछ भी हो, इस बात से इनकार करना कठिन है, कि जयचंद की बंधु-विरोधिनी भावना ने ही भारत में विदेशी साम्राज्य-स्थापना की नींव को दृढ़ किया ! और उस (भावना) का बीज वपन हुआ महाभारत की पारस्परिक बंधुविरोधी नीति द्वारा ! आज भी कुछ 'जयचंद' राष्ट्रीयता के विरुद्ध विदेशी शक्तियों को सहयोग देकर उच्छिष्ट टुकड़ों के रूप में 'लाटगीरी' अथवा 'सुलतानी' प्राप्त कर रहे हैं ! शायद उन्हें पता नहीं कि पृथ्वीराज पर विजय प्राप्त करके गोरी ने फौरन कन्नौज पर चढ़ाई कर दी थी !

आरत भारत !

सुरगण हू है मुग्ध जहँ 'चाह्यो निज अवतार,'
मच्यो आज वा भूमि पै चहुँ दिशि हाहाकार !! ॥१०॥

× × × ×

देव दुर्लभा सम्पदा सम्प्रति गयी विलाय !
भई महान मसान सी नन्दन-कुंज-निकाय !! ॥११॥
गुन-गौरव के संग सब विनस्यो बल-वीरत्व !
अपने हू धन-धान्य पै भयो विरानो स्वत्व !! ॥१२॥

---

(१) अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥
—श्रीमद्भागवत।

अर्थात्—(देवता लोग कहते हैं) "उन्होंने (भारतीयों ने) ऐसे कौन से सुकर्म किये थे, अथवा स्वयं भगवान् ही उन पर किस प्रकार प्रसन्न हो गये थे, कि उन्हें भारत भूमि पर मनुष्य-योनि में जन्म मिला ! हे मुकुन्द ! हमारी भी यही प्रबल इच्छा है।"

पता नहीं, भगवान् ने स्वयं जन्म दिया था या क्या, किन्तु यह निश्चय है, कि 'सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्' हमारी भारत भूमि विश्व में एक अति उच्च स्थान प्राप्त कर चुकी है। और जिस की प्रशंसा के गीत हम और हमारे प्राचीन कवि ही नहीं, बल्कि विदेशी भी आज तक गाते जा रहे हैं।

जाकी उज्वल कीर्ति तें जगमग भयो जहान,
बँध्यो दासता - पास में सो अब देश महान !! ॥१३॥

× × × ×

वनिक अनेकन देश के आये ,बनि बनि संत !
निश्छल भौन टिकाय कै सोये हम हा हंत !! ॥१४॥
लखि सोये चिर नींद मैं सिद्ध करी निज आस !
बदले वर आतिथ्य के दई दासता - पास !! ॥१५॥
हाथ बाँधि मुख सीं दियो करि अपने आधीन !
भोगहिं कष्ट अपार अब है कौड़ी के तीन !! ॥१६॥
अनुपम अक्षय कोष वह लूट्यो जानि अनाथ !'
स्वर्गोपम सुर - भूमि को धूरि मिलायो माथ !! ॥१७॥

× × × ×

विकस्यो-विश्व-शरीर महँ प्रान - रूप विख्यात !
दुखिया दीन-मलीन-सो हीन - अधीन लखात !! ॥१८॥

× × × ×

---

(१) "मि० डिगबी ने एक बार कहा था कि पलासी की लड़ाई के बाद पचास वर्षों में भारत से पचास करोड़ से अधिक और सौ करोड़ से कम पौण्ड (१ पौण्ड = १५ रुपये) इंगलैण्ड भेजे गये।"

मि० ब्रुक्स आदम्स "ला आफ सिविलिजेशन एण्ड डीके" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं —"पृथ्वी जब से आरम्भ हुई है तब से आज तक के किसी व्यवसाय से इतना लाभ नहीं हुआ है जितना भारत 'की लूट से हुआ है !"

—देश की बात (पृ० ७१)

दोष न उनको किन्तु कछु है वह अपनी भूल !
हम अपने पापन भये भ्रष्ट विनष्ट समूल !! ॥१९॥

सोये गाढ़ी नींद क्यों करि न सके पहिचान ?
तुला हाथ देखी, न क्यों देखी कमर कृपान !![1] ॥२०॥

जागे हू पै किन्तु क्यों कियो न कछु प्रतिकार ?
वनिक-पुत्र के हाथ मैं जब देखी तलवार !! ॥२१॥

सत्य समुझि बैठे अहो ! अपने घर की बात—
'वनिक - पुत्र जानै कहा गढ़ लीवे की घात' ! ॥२२॥

× × × ×

प्रथमहिं गोरी-रति-निरत गोरी[2] लियो बुलाय !
पुनि बसाय गोरे भवन भोरे भए भुलाय !! ॥२३॥

× × × ×

---

(१) पाठक ! अपना ध्यान इतिहास के उन पन्नों की ओर ले जाइये जब कि सोलहवीं शताब्दी में भारत को सोने की खान जान कर पोर्चुगीज़, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ पहले पहल व्यापार करने के लिये यहाँ आये थे ! तत्कालीन भारतीय शासकों ने विदेशी अतिथि समझ कर उन पर दया दिखाई, किन्तु वे कूटनीति से काम लेने लगे ! मद्रास, सूरत, और बम्बई में कुछ दिनों व्यापार करने के बाद १६९० ई० में कम्पनी ने कलकत्ते में ज़मीन ख़रीद कर अपने व्यापार का अड्डा जमाया ! उस समय भी उनके एक हाथ में तलवार थी और दूसरे में तराजू ! किन्तु अफसोस ! हम उन की तलवार को देखते हुए भी न देख सके ! भला जिन की सेनायें किराये पर ले-लेकर देश में अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गयी हों वे कोरे बनिये क्योंकर हो सकते थे ?

(२) पृथ्वीराज को सम्बोधित करता हुआ चन्दवरदाई कहता है,

'तू गोरी पर रत्तियं ! तो पर गोरी तक्कियं !!

—पृथ्वीराज रासो ।

(१) इतिहास प्रसिद्ध मोहम्मद गोरी, जिसने अनेक बार पृथ्वीराज से लड़ कर हार खायी, और दया-भिक्षा माँग-माँग कर अपनी जान बचायी । अन्त में कन्नौज के राजा जयचंद की सहायता से, जो आपसी विरोध के कारण पृथ्वीराज से जलता था, पृथ्वीराज को हराया और भारतवर्ष पर अपना अधिकार जमाया !

फूट

कछुक विभीषण ते लई 'कछुक दई जयचंद !
जाति-पाँति कछु 'धर्म' तें फैली फूट अमंद !!'[1] ॥२४॥

चाहत हू हम एक ह्वै रहि न सकैं दिन एक !
फोड़क - नीति चलाय नित नासत बुद्धि-विवेक !![2] ॥२५॥

× × × ×

---

(१) यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जाति-पाँति के कृत्रिम ढकोमले ने ही परस्पर विरोधी भेद-भाव उत्पन्न करके हिन्दुओं की जातीय एकता नष्ट की है ! इसी के द्वारा ऊँच-नीच और छूत-छात की दुर्भावनाओं का उदय होकर कोटि-कोटि हरिजनों को शताब्दियों से अत्याचार की चक्की में पिसना पड़ा है !

इसी प्रकार धार्मिक बहुवाद ने भी हिन्दू समाज का बेड़ा गर्क किया है ! कोई राम का उपासक है तो कोई कृष्ण का, कोई गणेश का पूजक है तो कोई महेश का। भला ऐसी दशा में पारस्परिक मेल-मिलाप की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

(२) फोड़क नीति—Divide and rule—साम्राज्यवाद का सब से बड़ा अस्त्र है। गोस्वामी तुलसी दास जी तो इसे वेद-विहित बतलाते हैं ! देखिये :—

साम-दाम, अरु दण्ड-विभेदा नृप-उर बसहिं नाथ कह वेदा।

भेदी भलो न भौन को करि देख्यों निरधार !
घर के भेदिन सों भयो भारत गारत—छार !! ॥२६॥

धन-वल, जन-वल, वाहु-वल नहिं काहू तें घाट,
एकहि एका - वल विना सव वल वारावाट !! ॥२७॥

× × × ×

सरल और वक्र

बढ़ो महातम वक्र बनि सरल भये दुखि-भार,
लखे सरल पशु-वक्र नहिं, होत मनुज-आहार !' ॥२८॥

---

(१) कुत्ता, बिल्ली, शेर, भेड़िया, घड़ियाल, चील, बाज, सांप-बिच्छू आदि हिंसक पशु-पक्षियों का मांस कोई नहीं खाता, क्योंकि उन के मांस से हानि की सम्भावना रहती है ! किन्तु गाय-बैल, भेड़-बकरी, हिरन आदि को खा जाना साधारण बात है, क्योंकि ये बेचारे सीधे-सादे-अहिंसक जीव हैं ! ठीक यही दशा देशों और जातियों की भी है। संसार में आज उन्हीं जातियों का बोल-बाला है, जो आवश्यकतानुसार क्रूरता और बर्बरता का व्यवहार करती हैं ! ऐसी जातियाँ कारण वश एक बार कभी दब भी जायँ, तो भी उन की स्वाभाविक जीवन-शक्ति कभी निष्प्राण नहीं होती। वीर जर्मन जाति का उदाहरण हमारे सामने है। विगत यूरोपीय महायुद्ध के पश्चात् ऐसा जान पड़ता था कि जर्मनी अब सौ-दो सौ वर्ष तक सिर उठाने योग्य न हो सकेगा, किन्तु दस-बारह वर्ष में ही वीर जर्मनों ने अपनी पूर्व प्रतिभा प्राप्त कर ली ! हमारा भूला भारत अभी तक 'सत्य' और 'अहिंसा' के प्रयोगों में लगा हुआ है ! उसे दिखाई ही नहीं देता कि 'हिंसा' और 'अहिंसा' दो भिन्न वस्तुएँ न होकर एक ही 'सत्ता' की दो अनिवार्य क्रियाएँ हैं। अस्तु !

यदि

जागहिं भारत - भाग्य हू भागहिं वेगि विपत्ति,
सदुपयुक्त यदि होहिं ये समय-शक्ति-सम्पत्ति।[1] ॥२६॥
करे एकता जाति किन भेद - भावना खोय,
जाति-पाँति, मत - पंथ के विप वारै कहुँ कोय! ॥३०॥

---

(१) समय, शक्ति और सम्पत्ति का सदुपयोग ही प्रत्येक व्यक्ति की सर्वतोमुखी उन्नति में सहायक होता है, और यही नियम समाज अथवा राष्ट्र की समुन्नति में भी लागू होना चाहिये, क्योंकि व्यक्तियों का सामूहिक रूप ही समाज कहलाता है। सो, हमारे यहाँ समय का जितना दुरुपयोग होता है, उतना संसार के किसी महा असभ्य और अशिक्षित देश में भी न होता होगा! हमारे ग्रामीण भाई वर्ष में केवल छः महीने काम करते हैं, शेष समय तापने, तमाखू पीने, सोने अथवा व्यर्थ की बातों में बिता देते हैं! अनेक काम उन के हाथों अब भी ऐसे हो सकते हैं जिन के द्वारा वे चार पैसे की आमदनी कर सकते हैं, जैसे चर्खा कातना, कपड़ा बुनना, बोदी बनाना, दोने-पत्तल अथवा टोकरियाँ बनाना, अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ कन्द-मूल तथा जड़ी-बूटियों का संग्रह करना, आदि। जापान के ग्रामीणों का सामाजिक अनुभव रखने वालों का कहना है कि वे लोग सदा किसी-न-किसी काम में लगे रहते हैं। चीनियों को तो हम यहाँ भी इतना मेहनती और उद्योगी पाते हैं। कागज़ के खिलौने, पंखे, सुई में तागा पिरोने की चाभियाँ आदि बना कर वे लोग भारत में ही कितना पैसा कमा लेते हैं। कारण क्या है? यही कि उन को अपने समय और शक्ति का सदुपयोग करना आता है।

रहि न जाय यदि यंत्र पै अनियंत्रित अधिकार,
मिटै अमिट-सो मूल तें बेकारी-दुख-भार।[1] ॥३१॥

समता की नव नीति लै हो यदि ग्राम-सुधार,
उजरो भारत हू लहै वहै समुन्नति-सार![2] ॥३२॥

---

(१) मशीनें हमारी मित्र हैं, शत्रु नहीं। जिस काम को सैकड़ों-हज़ारों आदमी मिलकर महीनों में करते थे, उसी को एक या दो आदमी मशीन की सहायता से चन्द रोज़ में कर लेते हैं। अब रहा यह कि यह इतने आदमी बेकार हो जायँगे, क्योंकि उनका काम मशीन ने छीन लिया। सो, इस में मशीन का कोई अपराध नहीं है, अपराध है उस शासन-व्यवस्था का, जो पूँजीवाद को कायम रखती है। अन्यथा यदि किसी मशीन पर भी इन सेठ साहूकारों और पूँजीपतियों का अधिकार न रहने पाए, उन्हें सर्वसाधारण जनता की चीज़ समझा जाय, उनके द्वारा उत्पन्न सामग्री और मुनाफे का उपयोग जनता के—केवल जनता के—लाभार्थ किया जाय, तो बेकारी का प्रश्न स्वयं हल हो जाता है। जैसा कि रूस आदि साम्यवादी देशों में मशीनों की मिल्कियत देश के पूँजीपतियों के हाथ से छीन कर जनता की सरकार ने स्वयं अपने हाथों में कर ली है। इसीलिये अब वहाँ बेकारी का नामोनिशान भी नहीं है।

(२) यह साम्यवाद का युग है। संसार के सभ्य और शिक्षित देशों में साम्यवादियों की संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। प्रजातंत्रवाद की लहर एक बार आयी और चली गयी। जनता ने उसे उपयोगितावाद की कसौटी पर कस कर देखा, तो वह भी मानव जाति के लिये सर्वतोभावेन कल्याणकारी सिद्ध न हो सकी। राजतंत्रवाद के समान ही उस में भी अनेक अनिवार्य बुराइयाँ भरी हुई थीं! अतः प्रकृति के नियमानुसार उस का स्थान साम्यवाद ने लिया और लेता जा रहा है। आज

चढ़ें न क्यों जन जाति के नव उन्नति - सोपान,
पढ़ें न पाठ - कुपाठ ये —"बाबा वाक्य प्रमान" ॥३३॥

बर्नार्डशा आदि यूरोपीय विद्वानों के अतिरिक्त भारत के महापुरुषों—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जवाहरलाल नेहरू, आदि—ने भी साम्यवादी देशों की शासन-व्यवस्था का अपनी आँखों देखा वर्णन किया है। और आज समाचार पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भी हमें उन के द्वारा निर्धारित समाज-सुधार सम्बन्धी सुयोजनाएँ नित्य पढ़ने को मिलती हैं। भारत की अवस्था यद्यपि अभी कुछ डावाँडोल है, फिर भी, यहाँ भी ठेठ कांग्रेस के अन्तर्गत, साम्यवादी दल नियमित रूप से स्थापित हो चुका है, और आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य में ही एक दिन कांग्रेस पर उस का पूर्णाधिकार स्थापित हो गया हो। अस्तु,

हमारे ग्रामों का सुधार भी तभी सम्भव है, जब ज़मींदारी आदि की कुप्रथाओं का अंत करके समतानीति के आधार पर—'श्रम' और 'उपज' का समान बटवारा करके—मज़दूर-किसानों को नवीन प्रणाली पर संगठित किया जायगा!

स्वराज्य !

सुन्यों न देख्यों आज लौं कोऊ कतहुँ समाज,
बिनु बल-पौरुष ही जहाँ माँगे मिल्यो स्वराज ! ॥३४॥

× × × ×

किमि प्रस्तावन तें मिलै किमि सागर के पार ?
बल-विक्रम ही तें खुले जेहि स्वराज्य को द्वार !![1] ॥३५॥
बादि विपुल संकट सहैं रहैं न क्यों चुप मार ?
है स्वराज्य तौ आपनो 'जन्म-सिद्ध अधिकार' ! ॥३६॥
आधि-व्याधि-भय-भीति को नित नव होत उदोत !
लगिहै कि धौं स्वराज्य को कबहुँ किनारे पोत ? ॥३७॥

× × × ×

---

(१) "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है !" स्वर्गीय महाराज तिलक ने नव-जाग्रति का शंखनाद करते हुए इस महामंत्र की घोषणा की थी !

यह दोहा उन भोले भाइयों की ओर संकेत करके लिखा गया है, जो भिक्षा-नीति का अवलम्बन करके स्वराज्य जैसी सुदुर्लभ वस्तु को अंग्रेजों से मांगने का दयनीय दुःसाहस करते हैं ! उन्हें शायद पता नहीं कि "द" अक्षर अंग्रेजी की भाषा में न है न कभी होगा । फिर राज्य-लक्ष्मी जैसी वस्तुएँ क्या कभी किसी ने माँग कर प्राप्त की है ? उन्हें तो,

"जेहि बल होय सु लेय, राखै सो जेहि तें रहै !"

सुन्यों आज इँगलैण्ड तें लायो एक जहाज—
कोरे कागद[1] में वँध्यो सत्तर सेर स्वराज !! ॥३८॥

सुनियत नेता जो लख्यो स्वप्न सुहावन आज--
'आवत चले स्वराज्य के केतिक लदे जहाज' !! ॥३९॥

× × × ×

(१) कोरा कागज़=ह्वाइट पेपर (White paper)

सुधार

वरसन सुगिरि स्वराज्य कौ खनि केतिक श्रम कीन !
प्रगट्यो छुद्र 'सुधार' को मूपक दूषक - दीन !!' ॥४०॥

× × × ×

---

(१) प्रत्येक देश में सामाजिक अथवा राजनैतिक 'क्रान्ति' होने से पहले एक अन्य अवस्था आया करती है। वह अवस्था, जिस में पुरानी बातों में साधारण-से उलट फेर करके जन साधारण को किंकर्तव्य विमूढ़ बना दिया जाता है। जनता, जो अभी तक अनेक प्रकार के सामाजिक और राजनैतिक कष्टों से छटपटा रही होती है, नये निराले प्रलोभन पाकर, कुछ काल के लिये, शान्त हो जाती है,—अन्दोलन करना बंद कर देती है। अधिकारियों को इससे बड़ा सहारा मिल जाता है। वे अपने शिकंजे और भी मज़बूत करके, समय आने पर, भारी से भारी विरोध का भी सामना करने योग्य हो जाते हैं। इन्हीं साधारण अधिकारों को, जो मचलते हुए जन समुदाय को बहलाने के लिये केवल ढकोसला मात्र होते हैं, आज कल की भाषा में 'सुधार' Refotms कहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, कि इन 'सुधारों' से जन साधारण का कोई स्थायी हित-साधन नहीं होता। वरन् इनके द्वारा देश एक अनोखे भँवर जाल में फँस कर चिर संचालित आन्दोलन को भी ढीला कर बैठता है !

भारतीय जनता का मुँह पोंछने के लिये इसी प्रकार के 'सुधारों' की दूसरी 'किस्त' शीघ्र ही मिलने वाली है ! (पहली 'किस्त' शायद सन् १७ में मिल चुकी है !)

हौं ही बौर्‌यो भूख-वस कै बौरो सब देस ?
कैसे लखहिं 'सुधार' मैं ये सुधार कौ लेस !! ॥४१॥

ढोंगी शुष्क सुधार के केतिक डंका पीट,
भूखो पेट किसान को भरै न कौंसिल-सीट ॥४२॥

भेद बढ़ैहैं वे अरे ! लै लै इनकी आड़ !
काहे कहत सुधार ? ये करिहैं व्यर्थ बिगाड़ !! ॥४३॥

× × × ×

नहिं शिक्षा नहिं शान्ति सुख नहिं आहार - अधार !
या 'सुधार' तें किमि कहौ ह्वै है श्रमिक-सुधार ? ॥४४॥

रोटी - रहित सुधार किमि कृषकहिं करहिं सनाथ ?
मोद कि पावै मुर्ग कहुँ आवै हीरक हाथ ? ॥४५॥

× × × ×

हाय दई ! कोउ न लखै भयो अजब अंधेर !
साथै भयो सुधार-मिस 'फ़ी सदियन' कौ फेर !![1] ॥४६॥

---

(१) 'फ़ी सदियों का फेर'—नये सुधारों के अनुसार जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों की एक निश्चित संख्या बड़े लाट साहब की कौन्सिल (असेम्बली) तथा प्रान्तीय कौन्सिलों में जायगी। इन सदस्यों के निर्वाचन में इस बात का ध्यान रहेगा कि प्रत्येक दल के लिये कौन्सिलों में एक निश्चित संख्या 'सीटों' की सुरक्षित रहेगी। जैसे, यदि कुल 'सीटें' १०० हों तो उन में से कुछ मुसलमानों के लिये होंगी, कुछ हिन्दुओं के लिये, और कुछ ईसाइयों-सिक्खों आदि के लिये। बस यहीं से बन्दर-बाँट की बदौलत आपसी झगड़े आरम्भ होंगे, और साम्प्रदायिकता के विषैले दाँतों को फूलने-फलने का सुयोग मिल जायगा !

फँसि 'फ्री सदियन'-फेर मैं भटकैं नेता भूरि !
कौन कहै 'अज्ञानियो! है इमि दिल्ली दूरि !! ॥४७॥

× × × ×

ढूँढ़न चले स्वराज्य जो खोलि कौंसिलन - द्वार
मूढ़ न जानत आजु लौं कुंजी सागर - पार !! ॥४८॥

पेट - पीर, पै कान की औषध देत अजान !
करिहैं नीम हकीम ये कैसे भारत - त्रान ? ॥४९॥

× × × ×

इत वेकारी - व्याधि - वस विलपहिं लाख - करोर !
उत नेता धावत चलैं कल कौंसिल की ओर !! ॥५०॥

मृग मरीचिका हैं अरे ! कहँ पैहौ तहँ नीर ?
अलख जगावन जात क्यों कल कौंसिल के तीर ? ॥५१॥

× × × ×

कहुँ वावन-वत्तिस, कतहुँ छप्पन प्रति शत माँग !
वैठि मदारी मौज सों देखै सव को स्वाँग !! ॥५२॥

देश में हिन्दू, मुसल्मान आदि के नित नये वखेड़े पहले ही मौजूद हैं, उस पर भी अब इन 'सुधारों' के रूप में 'फ्री सदियों के फेर' में गृह-युद्ध बढ़ेगा ! ..

(१) 'सूत न कपास, जोलाहे से लठावठी' के अनुसार, प्रथम तो इन सुधारों से गरीब दुखियों को कुछ मिलना नहीं है, और यदि कुछ कागजी अधिकार मिलें भी, तो वह हमारे गोरे प्रभुओं की इच्छानुसार कहीं दो चार वर्ष में मिलेंगे, सो भी उन लोगों को, जो अपने धन-बल द्वारा चुनाव के क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करेंगे, न कि दीन-हीन मजदूर-किसानों अथवा अनाथों वेकारों को, जिन के कष्टों को दूर

कौन सकै सर होर[1] की घोर कुटिलता गाय ?
फोरो बहुरि सुधार की फोरक नीति पठाय !! ॥५३॥

ऊँट हिराने मूढ़ ज्यों हेरत कुंभ मँझार !
त्यों स्वराज्य को ढूढ़िबो कल कौंसिल-दरबार !! ॥५४॥

कछु कारेन की वृद्धि तें सुरै कि कौंसिल-राग ?
'जम्बुक बोले का भयो अब का बोले काग ?' ॥५५॥

कारे - गोरे - भेद सों कहँ बदलै आदर्स ?
जैसे 'बिड़ला - बंधु' हैं त्यों 'राली - ब्रादर्स' !![2] ॥५६॥

× × × ×

करने के लिये सच्चे सुधार की आवश्यता है, किन्तु 'फी सदियों के फेर' में पड़ कर हम अभी से परस्पर विद्रोह का प्रदर्शन कर रहे हैं ! कौंसिल की सीटों का चक्कर हमें साम्प्रदायिकता के विषैले गढ़े में ढकेल रहा है ! शासकों का पौबारह है, क्योंकि इस से उन की फोड़क नीति और भी दृढ़ होती है !

(१) वर्तमान प्रधान मंत्री सर सैमुएल होर, जिन की कृपा से गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में गये हुए भोले भारतीयों को निबुआ-नोन चाटते हुए वापस आना पड़ा !

(२) नये 'सुधारों' द्वारा देश को मिलेगा क्या ? यही कि बड़ी और छोटी कौन्सिलों में गोरे बनियों के स्थान में कुछ काले पूँजी-पतियों की संख्या बढ़ जायगी । बस । किन्तु इन धनवानों के कौन्सिलों में पहुँचने से तो उन्हीं का हित-साधन होगा, धनहीनों का नहीं । आज वहाँ यदि राली ब्रादर्स का नक्कारा बज रहा है, तो कल 'बिड़ला-बंधुओं' का ढोल बज उठेगा ! फिर भला इस नक्कारखाने में जनता-तूती की आवाज़ किस प्रकार सुनाई दे सकती है ?

श्रमिकन को संकट कटै सुख पावहिं श्रमकार,
घटै बिसमता की बिथा सोई सुखद सुधार। ॥५७॥

(स्मरण रहे, यहाँ 'बिड़ला बंधु' और 'राली ब्रादर्स' से किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, वरन्, देशी और विदेशी पूँजीपतियों का आशय मात्र अभिप्रेत है।)

गौरांग

बसै स्यामता चंद्र जिमि उदधि लोनाई वास,
तिमि गौरांग - शरीर सित कलुषित हीय निवास !! ॥५८॥

× × × ×

मुख छोटे किमि को कहै बड़ी बड़े की भूल ?
बैठि आप क्यों डार पै काटौ ताहि समूल !![1] ॥५९॥

× × × ×

---

(१) हमारा यह कहना शायद अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि भारत का गोरा शासकवर्ग आज अपना अहित आप कर रहा है ! दीन-हीन मज़दूर-किसानों को उन के उचित अधिकार—असन, बसन और बास—यथोचित रूप में देकर—उन्हें सुखी-संतुष्ट रख कर—वे अभी शताब्दियों तक भारत की धरती से आनन्द-उपभोग कर सकते हैं। किन्तु खेद है, इतने चतुर होकर भी अंग्रेज़ भूल कर रहे हैं ! महात्मा गांधी सरीखे सब से बड़े हितचिन्तक को पाकर भी अपना 'हृदयपरिवर्तन' न करके, वे अपने ही इस सूत्र का आप उल्लंघन कर रहे हैं—जियो, और जीने दो—Live and let live

करि न सके सुख-शान्ति के साँचे - सही प्रयत्न ! ॥६०॥
धर्म - नीति - विज्ञान - बल वहु इलहामी ग्रंथ—
दरसावत किन शान्तिमय सुख-साधन के पंथ ? ॥६१॥
वेद - उपनिषद - दर्शनहु अष्टादशहु पुरान—
करि न सकैं दुख-द्वंद को क्यों कछु नव्य निदान ? ॥६२॥

× × × ×

सुख के थल दुख, शान्ति के थल अशान्ति दिखराय !
न्याय - नीति के थल सदा क्यों अन्याय लखाय ?[1] ॥६३॥

---

(१) संसार के चार प्रधान धर्म—बौद्ध, इस्लाम, हिन्दू और ईसाई—पुकार पुकार कर कह रहे हैं, 'सत्य बोलो, चोरी न करो, पाप करने से डरो', आदि। फिर भी इन्हीं धर्मों के अनुयायी झूठ बोलते, चोरी करते, और पाप करने से ज़रा भी नहीं डरते ! क्यों ?

'कुरान, बाइबिल तथा वेद आदि इलहामी (ईश्वरकृत) ग्रंथ हैं।' बहुत ठीक। लेकिन इन में परस्पर विरोधी विचार क्यों दीखते हैं ? क्या तीन-चार जुदे-जुदे इलहामी ग्रंथ लिखवाकर ईश्वर मनुष्य-समाज में परस्पर फूट और भेद-भाव उत्पन्न कराना चाहता था ?

इन तमाम धर्मों—सम्प्रदायों—तथा इलहामी ग्रन्थों के रहते हुए भी दुनिया में इतनी अशान्ति क्यों है ? अन्न-वस्त्र की इतनी अधिकता

होते हुए भी लाखों-करोड़ों नर-नारी भूखे नंगे क्यों फिर रहे हैं ? परस्पर अविश्वास, अन्ध-विश्वास, घृणा, अन्याय और अत्याचार का बाज़ार इतना गरम क्यों हो रहा है ?

उत्तर स्पष्ट है। इन सब धर्मों की स्थापना स्वार्थ मूलक पूँजी-वाद और अनीति मूलक एक तन्त्रवाद के आधार पर हुई है, इसी लिये इनके अनुयायियों में परस्पर मेल-मिलाप असम्भव है, क्योंकि इन में साम्यवाद की सच्ची भावना का सर्वथा अभाव है !

वर्ण-व्यवस्थापक

निर्गुण-नेति-अनीह-अज, अनुपम-अलख अगेय,
जाने ही ता 'ब्रह्म' के 'ब्राह्मण' भये अजेय![1] ॥६४॥

धृति-क्षमादिक धर्म के दस लक्षण सुख-सार,[2]
सिखैं सिखावैं प्रेम सों धनि-धनि 'विप्र' उदार!॥६५॥

× × × ×

---

(१) ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः'—हम कौन हैं? कहाँ से आये और कहाँ जायेंगे? जीवन और मृत्यु क्या है? हमें किसने कब और किस प्रकार बनाया?' आदि प्रश्नों का निश्चयात्मक उत्तर आज तक न कोई दे सका और न दे ही सकता है। हाँ, इस पर गहराई से विचार करने का प्रयत्न प्रत्येक देश के कुछ विशेष व्यक्तियों ने समय समय पर अवश्य किया है। भारत में ऐसे 'विशेष व्यक्तियों' को 'ब्राह्मण' की संज्ञा दी गई थी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'ब्राह्मण' होने के लिये किसी वंश विशेष में उत्पन्न होना तथा कुछ चिह्न विशेष धारण करना ज़रूरी नहीं था, वरन् तदनुकूल आचरण बनाकर तपस्या के द्वारा, पर-हित-चिन्तन के जरिये—ही ब्राह्मण के महान पद की प्राप्ति संभव थी।

(२) स्मृतिकार मनु जी कहते हैं :—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

—'मनुस्मृति'।

मुनिवर विश्वामित्र-[1] से कौटिल-[2] से नय-पूर !
आजु कहाँ द्विज देखिए जामदग्न्य[3] से सूर ? ॥६६॥

उपरोक्त श्लोक में जिन दस नियमों का निदर्शन किया गया है, वे तथा वैसे ही और भी अनेक अच्छे अच्छे नियम सुधरे हुए सुशिक्षित समाजों में आज भी पाये जाते हैं ! और जो व्यक्ति इन लक्षणों के अनुसार अपना आचरण बना लेता है, वह प्रत्येक देश समाज और काल में आदरणीय होता है, चाहे उस का पेशा अध्यापक का हो अथवा भंगी का। किन्तु उस साँचे में ढालने के लिये अनुकूल वातावरण भी तो हो ! क्या केवल यह कह देने मात्र से कि 'चोरी करना महा पाप है' चोरों की संख्या कम हुई ? नहीं, वरन् तदनुकूल व्यवस्था करने से ही यह सम्भव है। और वह व्यवस्था क्या है ? साम्यवाद—सम्पत्ति का समान उपभोग—जिस के द्वारा किसी को न तो चोरी करने की आवश्यकता हो, और न कहीं इतना अनियमित धन संचय ही हो कि जिसे देख कर किसी धन-हीन का प्रलोभन जाग्रत हो।

(१) बुद्धि-बल की विशेषता, तथा समाज में ब्राह्मणत्व के बल पर विशेष अधिकार-प्राप्ति की लालसा ने समय समय पर उन लोगों को भी, जो जन्म से ब्राह्मण नहीं कहे जाते थे, ब्राह्मणत्व के पद की ओर आकर्षित किया। और सच पूछिये तो 'ब्राह्मण' एक बड़ी भारी डिगरी थी (जैसी ईसाई पादरियों में होती है।) जिसे प्राप्त कर लेने पर समाज में प्रमुखता, पूज्य भाव तथा विशेष रिआयतें प्राप्त होती थीं। क्षत्रिय कहे जाने वालों में उत्पन्न होते हुए भी गाधि-नन्दन विश्वामित्र ने अपनी उच्च योग्यता के बल पर वह डिगरी प्राप्त की थी, और समाज में वे ब्रह्मर्षि घोषित किये गये थे। आज भी अनेक महा पुरुष भारत तथा इतर देशों में मौजूद हैं, जिन का जन्म ब्राह्मण वंश में नहीं हुआ, और न जो ब्राह्मणों के चिह्न विशेष—शिखा-सूत्र, तिलक माला, आदि—ही धारण करते हैं, किन्तु जिन को 'ब्राह्मण' मानने

से कोई भी विचारवान व्यक्ति नाहीं नहीं करता । महात्मा गांधी, खान अब्दुल गफ्फार खां, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा एंड्रूज आदि इसी श्रेणी के ब्राह्मण हैं । क्योंकि आर्त-अनाथों की सेवा तथा कला और विज्ञान का प्रसार ही सच्चा ब्रह्मज्ञान है ।

(२) कौटिल्य उपाधिधारी कूट नीतिज्ञ चाणक्य एक दृढ़कर्मी ब्राह्मण थे । अपने प्रखर पाण्डित्य तथा बुद्धि-बल द्वारा आप ने महा पराक्रमी नन्द वंश का समूल नाश करके इतिहास-प्रसिद्ध गुप्त वंश की नींव डाली थी । 'मुद्राराक्षस' नाटक में इनकी कूटनीतिज्ञता का दिग्दर्शन भली भाँति कराया गया है ।

(३) महर्षि यमदग्नि के वीर पुत्र मुनिवर परशुराम ने तत्कालीन क्षत्रिय राजाओं को विलासिता में फँसा देख कर अनेक बार उन से लोहा लिया था, और उन में से अनेकों को अपने फरसे के द्वारा मृत्यु-शैय्या पर सुला कर अनीति और अत्याचार मूलक शासन-सत्ता का अंत किया था ।

गोसांई जी ने इनके मुख से कहलाया है—

भुज-बल भूमि भूप बिनु कीन्हीं, बिपुल बार महिदेवन दीन्हीं !
मोर स्वभाव विदित नहिं तोरे, बोलसि निदरि बिप्र के भोरे !!

और, सच पूछिये तो ब्राह्मणों की उच्चता थी ही इस बात में कि वे समाज अथवा राष्ट्र के सभी प्रमुख प्रश्नों का समाधान सोच-समझ कर करते थे । तभी तो इनके संकेत मात्र से बड़े बड़े शासकों-सम्राटों तक की पिंडुली काँपती थी । आह ! वह ब्रह्मज्ञान, वह सत्य- संशोधन और वह परहित-चिन्तन अब कहाँ विलीन हो गया जिस के प्रभाव से दिलीप जैसे सम्राट महर्षि वसिष्ठ की गाय चराते, और राम-लषमण जैसे राजकुमार मुनिवर विश्वामित्र के चरण दबाते थे !!

ब्रह्म जानि ब्राह्मण भये गये काल के गाल !
अब हैं पूँजीवाद के रक्षक, भृत्य, दलाल !![1] ॥६७॥

× × × ×

सहि न सके सम्राट हू जिनकी उज्वल आँच,
पैसा - बल कहवाय लें तिनतें साँच-असाँच !! ॥६८॥

श्याम पताका लै करहिं गाँधी - स्वागत धाय !
रहे पताका - मिस मनहुँ उर-कारौंच दिखाय !! ॥६९॥

धन्य पुरातन सभ्यता ! धन्य सनातन धर्म !
करत न बर्बर-क्रूर, सो कियो हाय ! दुष्कर्म ![2] ॥७०॥

× × × ×

बनि बनि 'बड़े' अनैक्य के बोवत बीज अजान !
अब लौं 'सभ्य'-समाज महँ समझे जात प्रधान !! ॥७१॥

---

(१) सचमुच आज कल के 'ब्राह्मण' और क्या हैं ? अमीरों—पैसे वालों—के मन की कह कर उन्हें प्रसन्न रखना और उन के जायज़ और नाजायज़ सभी—कामों का समर्थन करना—उन्हें वेदविहित बतलाना—ही अब इन का पेशा रह गया है ! कहते हैं; किसी रईस-जादे को शराब पीने की इच्छा हुई, किन्तु संयोग से उस दिन एका-दशी होने के कारण शराब पीना निषिद्ध था। अब क्या हो ? सरकार की इच्छा किस प्रकार पूर्ण की जाय ? अन्त में राज-पुरोहित जी बुलाए गए। आप ने कहा—'शराब में दो बूंद गंगा जल छिड़क दिया जाय, तो वह साक्षात् गंगा-जल के ही समान हो जायगी !' इस प्रकार व्य-वस्था देकर ब्राह्मण देवता ने सरकार की अनुचित इच्छा पूर्ण कर दी !

(२) पहले शतक का ७४ वाँ दोहा देखिये।

बड़े गर्व सों वे कहैं जब तब बीच बजार—
'हम सों उन सों अब कहाँ पक्की को व्यौहार ?' ॥७२॥

अब लौं 'आठ कनौजिया नव चूल्हे' की बात—
जननी - मूल - अमेल की है उन में विख्यात !! ॥७३॥

---

(१) छूत-छात का भूत केवल भँगियों-चमारों आदि तक ही सीमित नहीं है, वरन् इस संक्रामक रोग में फँसा हुआ प्रत्येक व्यक्ति अपने से भिन्न छोटे या बड़े (?) वर्ण को क्रमशः अछूत समझता है ! ब्राह्मण कहे जाने वाले बुद्धू-समुदाय में तो छूत-छात का कोढ़ इतना समायाहुआ है कि उसका स्वरूप देखकर घृणा को भी घृणा आती है ! एक कट्टर कान्यकुब्ज ब्राह्मण, गौड़ वा सारस्वत की कौन कहे, अपने ही फ़िरके के ब्राह्मण की छुई हुई या बनायी हुई पूड़ी (रोटी नहीं !) तब तक नहीं खा सकता जब तक उस का बाकायदा रिश्ता-नाता न हो ! भले ही मैले पर बैठी हुई मक्खियाँ उन के भोजन के बीचों बीच बज-बजा कर बैठा रहें, चूहे-बिल्ली अथवा अन्य कोई गंदा जीव उन का चौका ही नहीं भोजन तक छू जाय, परन्तु अपने ही समान मनुष्य के द्वारा छूते ही वे चिल्ला उठेंगे—'हाय ! धर्म गया, धर्म गया !!' इस प्रकार क्रमिक श्रेणीगत—अछूतपन की यह भोंड़ा भावना हिन्दू जाति के पारिस्परिक मनोमालिन्य का कारण बन रही है ! और इसके उत्पादक समर्थक, अथवा संरक्षक हमारे ब्राह्मण भाई हैं ! और तारीफ़ यह कि ऐसे कट्टर लोगों को समाज में आदर्श कर्मकाण्डी समझा जाता है ! यदि कोई शिक्षित नवजवान किसी के सामने इन अप्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे 'नास्तिक' अथवा 'क्रिस्तान' उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं !

भखैं समूचो अज भलैं विधि सों भोग लगाय !
समझैं धर्म - बिनास पै छुवत रसोई हाय !![1] ॥७४॥

× × × ×

इनके 'फ़तवे' तें डरैं विज्ञानी - बिद्वान !
मानहिं मान्य-अमान्य हू ब्रह्म बखानो जान !![2] ॥७५॥
पढ़ि पोथी सोचहिं सदा थोथी बात असेस !
देखि दुर्दशा देश की नहिं लावहिं दुख लेस !! ॥७६॥

---

(१) लेखक के परिचित एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण (दीक्षित जी) हैं। एक बार एक भोज के अवसर पर आप विधिवत मांस का भोग लगा कर भोजन करने बैठे, तो मेरा हाथ किसी प्रकार आप के चौके में लग गया। बस फिर क्या था, आप शेष भोजन छोड़ कर यह कहते हुए चौके से उठ आये—"शुक्ल जी ! आपने यह अच्छा नहीं किया जो हमारा चौका भ्रष्ट कर दिया ! अच्छी बात है। अब हम भोजन नहीं करेंगे। हमें अपना धर्म भ्रष्ट थोड़े ही करना है !"

(२) 'ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः'

पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग अथवा समय के प्रवाह से अब शिक्षित नवयुवकों में इस पोपजाल को समझने की क्षमता यद्यपि बहुत कुछ होने लगी है, किन्तु बिरादरी के भूत का भय उन्हें भी खाये जाता है ! न जाने क्यों लोग पुलिस, सेना अथवा शेर-बाघ से भी उतना नहीं डरते जितना बिरादरी, अथवा जात-पाँत के इस कल्पित पाखंड से डरते हैं ! बड़े बड़े विद्वान् तक पितरों को पिण्डदान करते और पोंगे "ब्राह्मणों" के सामने हाथ जोड़ते तथा नाक रगड़ते देखे जाते हैं ! शायद इसीलिये कि इन्होंने ऐसे फ़तवे दे रक्खे हैं, जैसे—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए, तिन महँ प्रथम विप्र मोहिं भाए।

—रामायण।

तीस नारि इसलाम में प्रति दिन जिनकी जाहिं ![1]
तिन के कानन किन्तु कहुँ अब लौं जूँ न रिंगाहिं !! ॥७७॥

'दुर-दुर, छू-छू की विथा हरिजन-हीय जराय !
इन को पोंगा पंथ पै पीटत 'लीक' अघाय !! ॥ ७८ ॥

× × × ×

फिरत सुनावत जासु 'गुन' भरि भरि मुँह महराज !
चाहत अब वा "धर्म" कौं डूबन जल्द जहाज !! ॥७६॥

होत सदा जेहि आड़ लै अत्याचार अपार,
क्यों न कहैं तेहि 'धर्म' कहँ कोटि वार धिक्कार !! ॥८०॥

ठेकेदार न धर्म के होते यह महराज,
मानचित्र यहि देश को होतो औरहि आज !! ॥८१॥

× × × ×

करहिं सहस्रन साल तें अत्याचार अघाय ![2]
अबहुँ न पापिनि प्यास पै, इनकी सकी बुझाय !! ॥८२॥

---

(१) अभी हाल ही में माननीय मिस्टर जयकर का एक वक्तव्य पत्रों में प्रकाशित हुआ है, जिस में प्रत्येक नगर में स्त्री-आश्रमों की स्थापना की आवश्यकता बतलाते हुए आपने लिखा था कि 'औसतन तीस हिन्दू स्त्रियाँ प्रतिदिन मुसलमानों द्वारा बहकाई जाकर इस्लाम में प्रविष्ट होती हैं !' पाठक ! किस लेखनी में इतनी शक्ति है कि इस बात की टीका टिप्पणी कर सके ? अतः केवल इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि हिन्दू-समाज में जो स्त्रियाँ 'लावारिस माल' के समान निराश्रित-सी पड़ी हुई हैं उन का और होगा ही क्या ?

(२) मनुस्मृति आदि व्यवस्था-ग्रंथों तथा रामायण-महाभारत आदि में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जिन से पता चलता है कि धर्म की आड़ में ब्राह्मणों ने इतर वर्णों, स्त्रियों, अछूतों, तथा अन्य धर्मावलम्बियों

कहि कहि वेदाध्याय के नारी - शूद्र अजोग,[1]
ऊँच - नीच—बैषम्य के उपजाये बहु रोग !! ॥८३॥

× × × ×

पर अत्याचार का कुण्ठित कुल्हाड़ा किस निर्दयता से चलाया था ! ज़बरदस्ती 'सती' करने की दारुण कुप्रथा का अन्त अभी कल अंग्रेज़ों की कृपा से हुआ है ! अछूत आज तक अछूत हैं, और पता नहीं आगे कब तक रहेंगे ! और तो और, 'राम-राज्य' जैसे आदर्श राज्य में एक ब्राह्मण के धमकाने से बेचारे सीधे सादे राम ने तपश्चर्या में निरत एक कथित अछूत नवजवान का स्वयं बध कर डाला था ! और उसी 'मर्यादा पुरुषोत्तम' राम ने अपने ब्राह्मण मंत्रियों की सलाह से निस्सहाया, निर्दूषिता सती सीता को गर्भवती जान कर भी किसी धोबी की प्राइवेट बात को लेकर क्रूरता के साथ सर्वदा के लिये जंगल में छोड़वा दिया था !

दूसरों की धार्मिक कटुता देख कर उन्हें तास्सुबी कहने वाले इन ब्राह्मणों के फ़तवे देखियेः—

हस्तिना पीड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरम् !
न वदेद् यावनीं भाषाम् कण्ठेप्राण गतेनपिच' !!

(१) "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" ! ओह ! कैसा भयंकर और कितना अनर्थमूलक तथा घृणास्पद फ़तवा है ! और कितने सीधे सादे शब्दों में दे दिया गया है ! जैसे एक बिलकुल मामूली बात हो ! न्याय नीति, समता और सौजन्य का गला किस बेरहमी के साथ घोंटा गया है ! धर्म की आड़ में राष्ट्र पर कैसा जघन्य अत्याचार किया गया है ! भला विचार कीजिये, शूद्र तो बेचारे शूद्र ही ठहरे ! पढ़े अनपढ़े किसी प्रकार भी अपने दिन बिता लेंगे ! गुलाम जो ठहरे ! उनकी अशिक्षिता-वस्था से उनकी अपनी ही हानि होगी, औरों की नहीं ! (जो नहीं, राष्ट्र पर उनकी निरक्षरता का प्रभाव पड़े बिना न रहेगा।) किन्तु स्त्री ! आह ! राष्ट्र की

भले विधर्मी रूस के धर्मी आप अनीक !
वे समता - पथ में रमैं आप बिसमता-लीक !!' ॥८४॥

× × × ×

आधारशिला—नेशन की बुनियाद—स्त्री !! और उसी को "नाधीयाताम्" !! उसके अशिक्षिता रह जाने से राष्ट्र की क्या दशा होगी ? किसी ने नहीं सोचा !

अन्त में वही हुआ जो ऐसी मूर्खता पूर्ण कुव्यवस्थाओं से होना चाहिये ! राष्ट्र के बच्चे, शूद्र, स्त्रियाँ, सब निरक्षर हो गये और इसी के कुपरिणामस्वरूप दसियों शताब्दियों से दासता की शृंखलाओं में जकड़े हुए अभी तक हम अपने सर्वनाश की ओर दौड़ते चले जा रहे हैं ?

आज हिटलर को इसलिये कोसा जा रहा है कि उसने स्त्रियों को सार्वजनिक कामों से अलग करके घरेलू काम-धंधो में लगने के लिये मजबूर किया ! किन्तु इन 'वेदपाठी हिटलरों' की ओर संकेत करके दो शब्द कहने का साहस कभी किसी को न हुआ और न होगा जिनकी मूर्खता से इतने बड़े स्वतंत्र समुन्नत राष्ट्र का मलियामेट हो गया !

स्मरण रहे, माताओं के अशिक्षिता रहने से देश के बच्चों में निरक्षरता फैली, जिस से सर्वसाधारण की विचार-बुद्धि विलुप्त हो गयी ! जड़ता, रूढ़िवाद तथा कुरीतिमूलक पाखंड-पूजा ने राष्ट्र की आत्मा पर अज्ञान का परदा डाल कर उसे भीरु तथा कर्तव्यहीन बना डाला ! किन्तु भोजन भट्ट जी का क्या बिगड़ा ? वे नित्य प्रातः सायं घंटा हिला हिला कर कह लिया करते हैं—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहुः............"!!

(१) जिस धर्म ने न केवल सर्व साधारण की रोटी का सवाल हल नहीं किया, वरन् पारस्परिक विषमता की विषमयी दुर्भावना को जन्म देकर—राष्ट्र को अमीर-गरीब,ऊँच-नीच, छूत-अछूत आदि अनेक

बनावटी और बेबुनियादी श्रेणियों में बाँट कर उसे निरक्षर, आलसी, भीरु और कर्तव्यविहीन बना रक्खा हो, ऐसे नाशकारी धर्म का मूलोच्छेद करके रूस की साम्यवादी सरकार ने उसे सर्वदा के लिये देश-निकाला दे दिया है, और उस संकुचित मनोवृत्ति वाले धर्म के स्थान में विश्व-बंधुत्व का व्यापक नियम प्रचलित करके 'सब परिश्रम करें और सब आनन्द उठाएँ' का सिद्धान्त चलाया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि साम्यवाद का यह सिद्धान्त ही यथार्थ में सच्चा धर्म है, क्योंकि "धारयति धर्मः" के सिद्धान्तानुसार जो सब को धारण करे वही धर्म है। न कि वह जिस के द्वारा कुछ इने गिने मोटे-मुस्तण्डे अपने मठ-मन्दिरों और घाट-शिवालों में बैठे हुए मौज कर रहे हों!

रूस—

जग की सुख-सुविधान कौ किये सु साम्य - विधान
'धर्म निकार्यो रूस तें' फिर क्यों कहत अजान ? ॥८५॥

× × ×

वेई चिरजीवी, सुधी, उपभोगहिं सुख - रास,
तहँ अबाधित रूप जे असन, वसन, अरु वास । ॥८६॥

असन, वसन, अरु वास को है जब लौं सुविधा न,
गंग - तरंग भुजंग - सी कासी मगह-मसान ![1] ॥८७॥

यंत्र अनेकन को कियो जब तें आविष्कार,[2]
कष्ट किसानन के कटे सुख पायो श्रमकार ! ॥८८॥

---

(१) निम्नाङ्कित श्लोक के आधार पर, जिस में जीवन की आवश्यकताओं को धर्म पर प्रधानता दी गयी है,

असनं वसनं वासो येषां नैव विधानतः—
मगधेन समा काशी गंगाप्यङ्गारवाहिनी ।

—अज्ञात कवि ।

(२) अपनी पिछली पंच वार्षिक योजना में सफल होकर रूस की साम्यवादी सरकार ने खेती के लिये उपयोगी इतनी मशीनें बना कर किसानों को सौंप दी हैं कि खेती का व्यवसाय अब वहाँ कठिन, श्रमसाध्य, अथवा 'गँवारू' न रह कर मनोरंजन का एक साधन बन गया है । आज रूसी कृषक इन मशीनों की सहायता से दूनी तिगुनी

सुख के शुभ साधन सबै भोगत श्रमिक-समाज,
समता - नीति - अनन्यता करी प्रमानित आज । ॥८९॥
करि कर्तव्य - उपासना मिले कृषक - श्रमकार,
रूढ़ि - मूढ़ि-मत - वाद की विषमय बेलि पजार । ॥९०॥
जग की सुख-सम्पत्ति अब उपभोगै सब कोय,
'जिन की मोटी लाकरी तिन की भैंस' न होय !' ॥९१॥

फ़सिल उत्पन्न करके 'उत्तम खेती' सुख-सुविधाओं (बिजली, मोटर, जलकल, तथा टेलीफून, रेडियो आदि) से सुसज्जित स्वर्ग का साक्षात् नमूना बन रहा है।

इसी प्रकार कल कारखाने 'करोड़ी मलों' की बपौती न रह कर अब मज़दूरों को सौंप दिये गये हैं, और वे स्वेच्छानुसार, सच्ची लगन तथा ईमानदारी के साथ—अपना ही काम समझकर—उनका संचालन कर रहे हैं।

(१) सुख-सम्पत्ति का समान विभाग—वैयक्तिक पूँजीवाद का खात्मा करके विषमता तथा उस से उत्पन्न पारस्परिक कलह-द्वेष, ऊँच-नीच की दुष्प्रवृत्ति, स्वार्थपरता आदि का रूस में समूल नाश हो चुका है। आज प्रत्येक रूसी बच्चा-बूढ़ा-जवान स्त्री-पुरुष अपने अधिकारों और कर्तव्यों को पूरी तरह समझता है। उसे न जालिम ज़मींदार का भय हैं न क़ातिल कारख़ानेदार की चिन्ता, उसे आज केवल इस बात की चिन्ता है कि किस प्रकार रूस की अधिक से अधिक उन्नति हो सकती है, बस। रूस के पुस्तकालय, सिनेमे, नाटक-घर तथा विनोद और मनोरंजन के स्थान सार्वजनिक हैं, किसी एक की सम्पत्ति नहीं हैं। रूस की रेलें, मोटरकार, हवाई जहाज सर्व साधारण की—पब्लिक की सम्पत्ति हैं और पब्लिक की भलाई के लिये व्यवहार

'मेरो' 'तेरो' एक नहिं सब को स्वत्व समान,
सब कहँ सुख पहुँचाइबो है समवाद - विधान। ॥६२॥

× × × ×

है न भयो ह्वै है नहीं साम्यवाद सम आन,
जग की व्याधि अगाधि को साँचो - सही निदान ! ॥६३॥

घोर विसमता - व्याधि तें पावन चाहौ त्रान ?
करहु उच्च स्वर सों सदा साम्यवाद-गुन-गान ।' ॥६४॥

में लायी जाती हैं। 'सब सब के लिये' का उदार सिद्धान्त आज वहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पूरी पूरी सफलता सिद्ध कर रहा है ।

अब उस की तुलना ज़रा-धर्म प्राण भारत वर्ष से कीजिये जहाँ पग-पग पर हमारी स्वार्थपरता हमें ऊँच-नीच, अमीर-ग़रीब और राजा-प्रजा के भेद भावों से भर रही है !

(१) थोथी धर्म-भीरुता ने भारत का सदा सत्यानाश किया है ! आज भी अनेक शिक्षित भारतीय रूस के साम्यवादी सिद्धान्तों को मानने से इनकार करते हैं कि उन में 'धर्म' के लिये कोई स्थान नहीं है समझ में नहीं आता कि धर्म शब्द से यहाँ उनका क्या तात्पर्य है ? लौकिक और पारलौकिक उन्नति—अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि—ही यदि धर्म का सच्चा स्वरूप है,(यतोऽभ्युदयनिःश्रेयः स सिद्धिः स धर्मः) तो हमें आँख मूँद कर उन सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेना चाहिये जो साम्यवाद के आचार्यों ने आविष्कृत किये हैं, क्योंकि उनके द्वारा प्रत्येकक व्यक्ति को समाज में अधिक से अधिक उन्नति करने का सुअवसर मिलता है ।

भला यह भी कोई धर्म है जिसके सहारे एक खाये-पहने और दस भूखे-नंगे रहें ! ऐसी धर्म-प्रियता की पुकार मचाने वाले भोले भाइयों

के मस्तिष्क पर, मालूम होता है, विषमता के कुसंस्कारों ने ऐसा अधिकार कर लिया है, कि अब किसी की अच्छी से अच्छी बात भी उन की समझ में नहीं आती !

जो कुछ हो, इन पंक्तियों का लेखक सदियों से सताए हुए भारत के युवा-कृषक-मज़दूर, स्त्री-पुरुषों से गम्भीरता के साथ साम्यवाद के सिद्धान्तों का अध्ययन करने की अपील करता है। उसे पूरा पूरा विश्वास है, कि उन के दुख-दर्द की एक मात्र महौषधि साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार ही है। तथास्तु।

हिन्दू----

हलुआ - सी कोमल घनी चिकनो ज्यों नवनीत !
बांदे बाबुन सों बनी हिन्दू - जाति पुनीत !!' ॥६५॥

× × × ×

---

(१) कचकड़े से बने हुए जापानी खिलौने आकार-प्रकार में ठीक मनुष्यों जैसे होते हैं, किन्तु अपनी रक्षा आप कर सकने की शक्ति उन में नहीं होती। ठीक यही दशा हिन्दुओं को भी है! इतिहास के पन्ने उलट कर गड़े मुर्दे उखाड़ कर—देखने की आवश्यकता नहीं है, वहाँ तो पदे-पदे हमारी अरक्षितावस्था का भयानक चित्र सामने आता है; अतः हम आज की दशा क्यों न देखें, जब कि हमारी तीस-तीस बहू-बेटियां नित्य मुसलमानों में शामिल हो रही हैं! जहां तक धर्म का सम्बन्ध है, हम साम्यवादी न हिन्दू हैं, न मुसलमान, न और कुछ, किन्तु अनीति और अत्याचार हमारी दृष्टि में बुरे हैं। हम अत्याचारियों को भी बुरा नहीं कहते, वरन् अत्याचार को आँखें मूँद कर चुपके से सह लेने वाले हमारी दृष्टि में दोषी हैं। इस लिये हमें चाहिये कि हम अपनी उन कमज़ोरियों को ढूंढ निकालें जिन के द्वारा हम पर अत्याचार होना सम्भव है!

एक 'हिन्दू-हितैषी' भाई जी ने उस दिन इलाज बतलाया —"बन्द करो इन लड़कियों का पढ़ाना लिखाना, इन्हें तब तक घरों से मत निकलने दो जब तक हम अपने आप को सुरक्षित न समझ लें।"

शाबास! क्या बढ़िया नुसखा ढूंढ निकाला! भला एक हजार वर्ष से अरक्षित रहने वालों के सुरक्षित होने की आशा अब क्योंकर

स्वान-पुच्छ तें तुच्छ किमि कहिये हिन्दू - जाति ?
बँधे शताब्दिन लौं भई सरल न काहू भाँति !! ॥६६॥

कबहुँ न सीख्यो हिन्दुअन करि नीके निरधार—
तैसी दीजै पीठ, जब जैसी वहै बयार ! ॥६७॥

की जा सकती है ? फिर, आप के घरों के आस-पास क्या मशीनगन लेकर गोरों का पहरा बैठाया जायगा ? अरे भाई, इन उथले इलाजों से अब काम नहीं चलने का ! मर्ज़ और मरीज़ दोनों को ज़रा गहरी निगाह से देखिये ! आप के हिन्दुत्व की बुनियाद ही इतनी निकम्मी और निराधार है कि उस में आज से बहुत पहले आमूल परिवर्तन की आवश्यकता थी ! आप की जात-पाँत, छूत-अछूत, ऊँच-नीच तथा धार्मिक बहुवाद ने एकता की शृंखला को छिन्न-भिन्न कर डाला है ! आप के यहाँ इतना 'लावारिस माल' बेकार पड़ा है, जिसे देखकर सम्भवतः सब का मन ललचा उठता है ! तब बेचारी लड़कियों को मूर्ख बना कर क्या लीजियेगा ? अस्तु । आवश्यकता इस बात की है, कि हमारे समाज के नेता, हिन्दू सभा के संचालक हिन्दुओं की भीतरी बुराइयों को दूर करने के व्यापक आन्दोलन करें । बाल-विवाह, अनमेल और वृद्ध विवाह, धार्मिक बहुवाद आदि इस युग की बातें नहीं हैं। अतः आधुनिक नियमों से भरपूर नयी समाज-व्यवस्था—स्मृति—का निर्माण किया जाय, जो समता का सरल और सच्चा रूप हमें बतला सके । स्मरण रहे, मिस मेयो को कोसने से हमारा समाज दूध का धोया हुआ सिद्ध न हो सकेगा, न 'मदर इण्डिया' के उत्तर में 'फादर इण्डिया' लिखने से कोई अधिक लाभ है, वरन् अपनी बुराइयां खोज कर निकाल बाहर करना ही हमारे लिये हितकर होगा, क्योंकि जब अपना ही दाम खोटा हो, तब परखने वाले को क्या दोष दिया जा सकता है ?

कोटि-कोटि हरिजन जहाँ विलपहिं दीन - अधीन !'
क्यों न होय तेहि जाति को छिन-छिन जीवन छीन !!'॥९८॥

वैधव्यानल जरहिं जहँ कोटिन बिधवा बाल !
उद्धारै तेहि जाति कहँ को माई को लाल ? ॥९९॥

कोटि कुरीतिन में बँधी सहत सदा अन्याय !'
गहत न गुन की गैल पै 'विधि की बात बताय !! ॥१००॥

---

(१) पराधीनता-पाश में बँधी हुई पराजित जातियों में कुरीतिमूलक रिवाजों का उत्पन्न हो जाना यद्यपि स्वाभाविक है, क्यों कि पराधीनता एक ऐसा हलाहल विष है जो जातीयता के भावों और स्वाधीन विचारों को कभी पनपने नहीं देता । परन्तु हिन्दुओं में 'कर्मवाद' जैसी कुछ ऐसी फ़िलासफ़ियों ने घर कर लिया है जो इनके लिये 'कोढ़ में खाज' का काम कर रही हैं ! इतनी अधिक दीर्घसूत्रता और कहाँ मिलेगी ? छोटी-बड़ी प्रत्येक बात का कारण हम भाग्य, अथवा पुर्वजन्म कृत पापों का फल मान लिया करते हैं ! बाल वृद्ध अथवा, बेजोड़ विवाहों के कुपरिणामों को भाग्य दोष मान लेना, अथवा चेचक की छुतही बीमारी का इलाज न करके अंधे अपाहिज हो जाने पर पूर्व जन्म के पापों का फल समझ लेना हमारी नित्य की बातें हैं ! इतिहास से पता चलता है, कि शत्रु-सेना के सिर पर आ पहुँचने पर भी, पत्रे में मूहूर्त न होने के कारण, युद्ध की तैयारी न की जा सकी ! पराजित, किन्तु चालाक, शत्रु के एक तीर के निशाने से हमारा लहराता हुआ झंडा टूट कर गिर गया, बस पंडित जी ने व्यवस्था दे दी-"ईश्वर का कोप हुआ है, अब हमारी हार निश्चित है" !

(२) अभी दस दिन कलकत्ते के 'विश्वमित्र' में पढ़ा था कि पंजाब के एक बड़े भारी सनातनधर्मी नेता के सुधरे हुए विचारों वाले सुपुत्र जी ने अपनी साली के विवाह के लिये, जिसकी शायद ६—७

वर्ष की आयु में सगाई मात्र हुई थी, और जिसके पुनर्विवाह (?) की तैयारी वे कई वर्षों से कर रहे थे थे, जब महामना मालवीय जी से आज्ञा मांगी तो सुनते हैं उत्तर मिला कि "न्याय्य समझते हुए भी तब तक इस कार्य की स्वीकृति नहीं दे सकते जब तक विद्वान् विचारकों की समिति नियमानुसार अपना निर्णय न दे ले।" ठीक ही है, परन्तु 'नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' के अनुसार बेचारी बालिका का जीवन तो नष्ट ही हो जायेगा !

पाँचवाँ शतक

ग्राम

लदे लता-तरु-पुंज तें सोहत सुखद सुधाम,
नंदन-कुंज-निकुंज? नहिं भारत-ग्राम ललाम![1] ॥ १ ॥

× × × ×

शस्य-श्यामला भूमि जह लहलहात महुँ फेर,
महमहात मारुत मलय गहगहात घन-घेर! ॥ २ ॥

राजत ताल-तमाल-तरु अम्ब-कदम्ब बिसाल,
समुद सुखेतीनाथ के जहाँ बिराजत बाल! ॥ ३ ॥

वे वन-बाग-तड़ाग-मग वे तटिनी-तट, घाट,
वे पनघट-चटसार, वे गोचर-भूमि सपाट! ॥ ४ ॥

× × × ×

---

(१) वैयक्तिक पूँजीवाद क कुपरिणाम स्वरूप प्राकृतिक ग्राम्य-श्री का सर्वनाश होकर नगरों के कृत्रिमसौन्दर्य का विकास हुआ!

अत्याचार-अनीति-बल बढ़ी विपुल सम्पत्ति!
भयी असंगल तें मनहुं मंगल की उत्पत्ति!!

गाँव या घूरे ?

सरे पात पसरे खरे मल पूरे चहुँ फेर
ग्राम कहैं इन सों हरे ! कै घूरे के ढेर ?।

× × × ×

भये सकल सुख-स्वप्न-से जल्पित - कल्पित काज
कहन चले कबि जासु की करुन कहानी आज !!।

---

(१) महात्मा गांधी ने एक बार "नवजीवन" में एक लेख
शीर्षक से लिखा था !

(२) पचास-साठ वर्ष पूर्व जो कानपुर अंग्रेज़ों की सेना व
साधारण कैम्प था (जिस से बदल कर पहले 'कम्पू' और फिर व
हुआ)। आस-पास के ग्रामों का सौन्दर्य अपहरण करके आज व
महानतम दानव के समान मीलों में बस रहा है ! कल-कारख़
खुलने और मशीनों के प्रचार से—ग्रामीण उद्योग-धन्धों का नाः
के कारण-ग्रामों के निवासी कुली मज़दूर बनकर वहाँ आए औ
आबाद हो गये ! इस प्रकार नगरों की वृद्धि से धीरे धीरे भाः
ग्राम्य-श्री का नाश हुआ, और होता जा रहा है।

भारत की ग्राम्य-श्री के विनाश का वर्णन करना सरल नः
इस के लिये तो किसी कवि-हृदय की ही आवश्यकता है। यही
थे। जहां के निवासी सरल सौम्य और स्वाभाविक जीवन बित
सर्वदा 'सत्यं शिवं सुन्दरम' की उपासना में दत्तचित्त रहते थे
ग्रामों में कृषि-वाणिज्य और गोपालन द्वारा विश्व को विः
विराजमान रहती थीं। यहीं से इस महान सभ्यता और स

'वृन्दावन से वन गये' 'नन्दग्राम - से ग्राम' !
भये सकल सुषमा - सदन दुख दारिद के धाम !! ॥७॥
जरे दुखादिक सलभ सब जातहिं जासु समीप,'
रस-विहीन, दुख-लीन हैं ते. अब ग्राम-प्रदीप !! ॥८॥

कला और विज्ञान, तथा सुख और सौन्दर्य का विकास हुआ था जिस के लिए हम ही नहीं, सम्पूर्ण संसार गर्व करता है ! इन्हीं ग्रामों के निवासी इतने सच्चे सुखी और ईमानदार होते थे कि जिनके द्वार पर कभी ताला नहीं लगता था। आज इन ग्रामों की क्या दशा है, इसे ज़रा कलेजा थाम कर सुनिये !

(१) आज 'गँवार' कह कर जिन ग्रामीणों का तिरस्कार किया जा रहा है, पूर्व काल में वे ही परम प्रतिष्ठा के पात्र थे। देश के धन-धान्य तथा कला-कौशल की वृद्धि इन्हीं ग्रामीणों पर निर्भर थी। सम्पूर्ण आर्थिक समस्याओं का सुलझाना इन्हीं का काम था। इन्हीं की बदौलत ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा सन्यासी अपने भरण-पोषण की चिन्ताओं से मुक्त हो कर देश में अध्यात्म-ज्ञान की गङ्गा बहाया करते थे। इन के गृहस्थ-जीवन की कुछ झलक निम्नाङ्कित छन्दों में देखिये;

प्राचीन ग्राम्य जीवन की एक झलक

आश्रम चतुष्टय के सदा जो प्राण - धन प्रख्यात थे,
अज्ञान के नाते जिन्हें दुख - दैन्य ही अज्ञात थे।
ऐश्वर्य सारे सर्वदा करबद्ध द्वारे थे खड़े,
थी कौन बाधा विश्व की जो मार्ग में उनके अड़े ? ॥१॥

निर्बल-निराश्रय के सदा सुख - शान्ति - दाता थे वही,
भारत - भवन में भव्य भावों के विधाता थे वही।

मुखरित रहे अतीत जहँ कृषक - कलापी - गान ;
अब दीखहिं जठरागि के धू - धू करत मसान !! ॥ ६॥

× × × ×

आतिथ्य के अवतार थे, कर्तव्य - पालन के पिता,
सर्वस्व क्या, पर - हेत जीवन - प्राण देते थे बिता ! ॥२॥
नव नागरिकता के सुभावों से समन्वित थे वही,
उनके समुज्वल कीर्ति - सौरभ से सुगन्धित थी मही।
वे विश्व को कल्याण - कारक दान - दायक थे सदा,
वे ज्ञान-गायक, नीति-नायक, श्रुति-विधायक थे सदा ॥ ३॥

शुभ ब्राह्म-वेला में विभू का गान गाया जा रहा,
वर स्रोत भगवद्भक्ति का घर-घर बहाया जा रहा।
निर्मल जलाशय में नियम से नित नहाया जा रहा,
व्यायाम-बल से बाहु का विक्रम बढ़ाया जा रहा ॥ ४ ॥

सुख-शान्तिकारी यम-नियम का पुण्य पालन हो रहा,
जो आत्म-तन की, नाशकारी कालिमा को धो रहा।
वे जग चुके, जब विश्व था अज्ञान-तम में सो रहा,
उनके नवाविष्कार से संसार - संकट खो रहा ॥ ५ ॥

"सत्यं-शिवं (औ) सुन्दरम्" के वे उपासक थे सदा,
आलस्य, आत्म - प्रवंचना के भी विनाशक थे सदा।
स्वाधीनता के भव्य भावों से सदा भरपूर थे,
अभिमान से अति दूर थे, पर स्वात्म-मद में चूर थे ॥ ६ ॥

रंक परे पर्यङ्क विनु पंक भरे घर-पाथ !
जनु दीनता डसाय कै सोये दारिद्नाथ !! ॥१०॥
असन बसन अरु वास की सुनियत सदा पुकार !
मनहुँ दीनता लै कटक उतरी ग्राम-मँझार !! ॥११॥

× × × ×

पढ़े कुमंत्र कुतंत्र के कढ़े न दुख तें पाँव !
'दीनवंधु' की बहिन लै जबहिं बसाई गाँव !! ॥१२॥

वे सर्व सुख कारक हितों में दीखते परतंत्र थे,
निज सौख्य कारी कार्य-साधन में सदैव स्वतंत्र थे।
निज और पर का भेद उनके प्रेम में वाधक न था,
शुभ-सौम्य समता-नीति का उन सा कहीं साधक न था ॥७॥

वे क्या न थे? सब थे वही, था कौन उन सा, कब कहाँ?
उन से वही थे, धन्य थे वे! धन्य भू वे थे जहाँ!
उनका अतुल ऐश्वर्य-यश, क्या माप सकना शक्य है?
रवि-रश्मि की गणना न क्या करना सदैव अशक्य है? ॥८॥

× × × ×

(२) कविवर रहीम का एक दोहा है—

दिव्य दीनता के दुखन का जानै जग अंधु ?
भली विचारी दीनता दीनवंधु से वंधु !

'दीन वंधु' की इसी बहिन (दीनता) ने जब से ग्रामों में पदार्पण किया है तब से वहाँ पारस्परिक सुमति-सलाह का सर्वथा सत्यानाश हो गया है! लोग आपस की फूट में फंसकर अदालत और मुकदमेबाजी के जाल में जकड़ गये हैं! भाई-भाई, चचा-भतीजे तथा पिता-पुत्र तक

मुखरित रहे अतीत जहँ कृषक - कलापी - गान ;
अब दीखहिं जठरागि के धू - धू करत मसान !! ॥ ६॥

× × × ×

आतिथ्य के अवतार थे, कर्तव्य - पालन के पिता,
सर्वस्व क्या, पर - हेत जीवन - प्राण देते थे बिता ! ॥२॥
नव नागरिकता के सुभावों से समन्वित थे वही,
उनके समुज्वल कीर्ति - सौरभ से सुगन्धित थी मही.।
वे विश्व को कल्याण - कारक दान - दायक थे सदा,
वे ज्ञान-गायक, नीति-नायक, श्रुति-विधायक थे सदा ॥ ३ ॥

शुभ ब्राह्म-वेला में विभू का गान गाया जा रहा,
वर स्रोत भगवद्भक्ति का घर-घर बहाया जा रहा।
निर्मल जलाशय में नियम से नित नहाया जा रहा,
व्यायाम-बल से बाहु का विक्रम बढ़ाया जा रहा ॥ ४ ॥

सुख-शान्तिकारी यम-नियम का पुण्य पालन हो रहा,
जो आत्म-तन की, नाशकारी कालिमा को धो रहा।
वे जग चुके, जब विश्व था अज्ञान-तम में सो रहा,
उनके नवाविष्कार से संसार - संकट खो रहा ॥ ५ ॥

"सत्यं-शिवं (औ) सुन्दरम्" के वे उपासक थे सदा,
आलस्य, आत्म - प्रवंचना के भी विनाशक थे सदा।
स्वाधीनता के भव्य भावों से सदा भरपूर थे,
अभिमान से अति दूर थे, पर स्वात्म-मद में चूर थे ॥ ६ ॥

रंक परे पर्यङ्क बिनु पंक भरे घर-पाथ !
जनु दीनता डसाय कै सोये दारिद्नाथ !! ॥१०॥

असन बसन अरु वास की सुनियत सदा पुकार !
मनहुँ दीनता लै कटक उतरी ग्राम-मँझार !! ॥११॥

× × × ×

पढ़े कुमंत्र कुतंत्र के कढ़े न दुख तें पाँव !
'दीनबंधु' की बहिन' लै जबहिं बसाई गाँव !! ॥१२॥

वे सर्व सुख कारक हितों में दीखते परतंत्र थे,
निज सौख्य कारी कार्य-साधन में सदैव स्वतंत्र थे।
निज और पर का भेद उनके प्रेम में बाधक न था,
शुभ-सौम्य समता-नीति का उन सा कहीं साधक न था ॥७॥

वे क्या न थे? सब थे वही, था कौन उन सा, कब कहाँ?
उन से वही थे, धन्य थे वे! धन्य भू वे थे जहाँ!
उनका अतुल ऐश्वर्य-यश, क्या माप सकना शक्य है?
रवि-रश्मि की गणना न क्या करना सदैव अशक्य है? ॥८॥

× × × ×

(२) कविवर रहीम का एक दोहा है—

दिव्य दीनता के ,दुखन का जानें जग अंधु ?
भली बिचारी दीनता दीनबंधु :से बंधु !

'दीन बंधु' की इसी बहिन (दीनता) ने जब से ग्रामों में पदार्पण किया है तब से वहाँ पारस्परिक सुमति-सलाह का सर्वथा सत्यानाश हो गया है ! लोग आपस की फूट में फंसकर अदालत और मुकदमेबाजी के जाल में जकड़ गये हैं ! भाई-भाई, चचा-भतीजे तथा पिता-पुत्र तक

सरे पनारे मल भरे बजबजात बुँबुआत !
ग्राम न कहिये, ये खरे कुम्भीपाक जनात ! ॥१३॥
बने चतुर्दिक देखिये कहुँ उपड़ौर बिसाल !
भोगहिं सौख्य स्वराज के जहँ बहु बीछी-ब्याल !![1] ॥१४॥
बनत बास कृमि-कीट को पसरो सरो पयार !
कहुँ घूरे की बास बहु विषमय करति बयार !! ॥१५॥

× × × ×

कहत ग्राम्य जलवायु कहँ परिपालक केहि लागि ?
तासम घालक कौन है प्रबल करै जठरागि ?[2] ॥१६॥

में मुकदमें होने लगे हैं ! फलस्वरूप विपत्ति के दल-बादल ग्रामीण जनों के सिर पर मँडला रहे हैं ! गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है —

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना, जहां कुमति तहं बिपति निधाना!!

(१) कुछ तो मूर्खता और आलस्य, और कुछ असुविधाओं के वशीभूत होकर वेचारे किसान गोबर को पाथ पाथ कर जलाने के लिये उपले-कंडे बना डालते हैं ! गोबर का एक चेंहटा भी वे घूरे पर नहीं जाने देते ! परिणाम यह होता है कि गोबर से बनने वाली बढ़िया खाद उनके चूल्हे अथवा अलाव में जल कर भस्म हो जाती है ! खेतों की उर्वरा शक्ति आज इतनी कम क्यों है ? इसी उत्तम खाद के अभाव से पशुओं की भारी कमी के कारण गोबर होता भी बहुत कम है !

जो खाद ये घूरों से बनाते भी हैं, वह निरी धूल और कूड़े-कचड़े की होती है, जो उतनी उपयोगी नहीं होती !

(२) कैसी भीषण विषमता है ! अनुकूलता भी प्रतिकूलता में परिणत हो रही है ! मित्र भी शत्रु हो रहे हैं !! जिस जलवायु की

नहिं शिक्षा नहिं सभ्यता तापै नित्य दुकाल !
ग्राम अभागे हिन्द के हैं दुख-दारिद-जाल !! ॥१७॥
क्यों ग्रामीण छयादि के रोगन रहे पटाय ?
नहिं जानत ग्रामीण-धन —गोधन गयो कटाय !! ॥१८॥
सखे सिराने वे सुदिन जल माँगे पय पाय !
अब ग्रामन कहँ पाइये छाछहु छाँह बिठाय ? ॥१६॥
धावित लखीं सुधेनु वहु जिन भौनन की ओर,
जात लखैं मृत खाल के तहँ अब डाँगर-ढोर !!' ॥२०॥

× × × ×

बदौलत बहुतों का स्वास्थ्य और सौन्दर्य बढ़ता है, हमारे ग्रामीण जनों के लिये वही दुःख का कारण हो रहा है ! एक ओर वे धनवान हैं, जिन को नित्य मन्दाग्नि की पीड़ा सताती है, और दूसरी ओर ये ग्रामीण हैं जिन की जठराग्नि स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु के कारण इतनी प्रबल है कि अन्न के अभाव में वह उन की अंतड़ियों को जलाकर—उन्हें रुधिर विहीन बनाकर—उन के लिये क्षय आदि भयानक व्याधियों का कारण बन रही है क्या इस विषमता का कोई भी इलाज नहीं है ?

(१) अन्य अनेक बातों के अतिरिक्त गोवंश का व्यापक विनाश भी ग्रामीणों की दुर्दशा का एक प्रमुख कारण है ! जब से प्रति वर्ष लाखों की संख्या में गायें कटने लगीं तभी से ग्रामीणों की सुख-सुविधाएँ दिन दिन घटती जा रही हैं ! यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि एक गाय से ही एक किसान के चार-पांच व्यक्तियों वाले परिवार का भरण-पोषण बड़ी सरलता से हो जाता है। एक बार लोटा भर ताजा मट्ठा मिल जाय, तो दिन भर का सहारा हो जाता है। संध्या को दो रोटियां भी मिल गयीं, तो अगले दिन फिर मिलने की

है सेवकाई बड़ि यहै लेहिं न बस्त्र उतार !
अपढ़ - गँवारन तें चहौ अब केतिक सतकार ? ॥२१॥

राह बतावत कूप की दै निज लोटा - डोर,
अपढ़ गँवारन तें, न है यह आतिथ्य अथोर ? ॥२२॥

प्रथमहिं अन्न - अभाव तें रहे अभागे सूख !
तापै निरुज - निवास तें बाढ़ति बैरिनि भूख !![1] ॥२३॥

× × × ×

भारत ग्रामहिं नरक-सम काहे कहत अजान ?
दुख पांवहिं पापी उतै इत निष्पाप किसान !! ॥२४॥

भारत - ग्राम मसान की रहत न समता सींव !
जारत जीव सजीव ये वे जारहिं निर्जीव !! ॥२५॥

× × × ×

आशा में रात सुगमता से कट जाती है ? किन्तु जहां उसका भी आधार न हुआ, वहां के दुख-दर्द की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

(१) फ़िजी से वापस आये हुए एक दीन-हीन परिवार को लक्ष्य करके यह दोहा लिखा गया था ! बेचारे मथुरा लोधी ने अपनी २५—३० वर्ष की फ़िजी की कमाई में से अधिकांश तो जहाज़ के किराये में ख़र्च कर दिया था, शेष १२—१५ रुपये मटियाबुर्ज में बीमारी के समय उड़ गये ! बेचारा ख़ाली हाथ, जैसा इटावा ज़िले के एक गाँव से गया था, वापस आ गया ! बुढ़ापे के कारण अब उस से कोई काम भी न होता था ! भूख और बीमारी से शीघ्र ही उस के प्राण पखेरू उड़ गये ! रह गयी अंधी और वृद्धा सुखिया, सो फ़िजी-निवासियों की कहानियाँ सुनाकर भीख माँगा करती है !

सत्ता—

किते न ज्ञानी गुन-भरे काहि न कौन सिखाय ?
कौनै तजी न शुभ गली सत्ता-मद बौराय ?[1] ॥२६॥
सत्ता के बल विश्व महँ बढ़ति विपत्ति महान !
सत्ता पाय न जाय मद है को मरद जहान ? ॥२७॥

× × × ×

सत्ताधारिन सों कहै को नीके समुझाय ?[2]
काल पाय सत्ता, पके पत्ता-सी झरि जाय !! ॥२८॥

---

(१) निम्नाङ्कित पद्यों के आधार पर :—
किती न गोकुल कुल-वधू काहि न केहि सिख दीन ?
कौनै तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर लीन ?
—बिहारी।

तथा

सुनहुँ तात अस को जगमाहीं, प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं ?

और

श्री-मद वक्र न कीन्ह केहि ममता बधिर न काहि ?
मृग नयनी के नयन-सर को अस लाग न जाहि ?
—तुलसी।

(२) पूँजीवाद के आधार पर स्थापित सत्ता तभी तक स्थिर रह सकती है, जब तक मजदूरों-किसानों में जागृति नहीं होती। एक बार जहाँ इन दीन-हीन भुक्खड़ों को अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों—असन,

जिन-बल पाय चलाय मिल संचहु द्रव्य अपार,
तिनकी करुण पुकार पै गोलिन की बौछार !![1] ॥२६॥

लै उपाधि की व्याधि बहु मान - महातम खोय,
राय - बहादुर हू भयो काय - बहादुर कोय ? ॥३०॥

सद्गुन - भार सँभारिहै किमि यह तन मोटवार ?
सीधे बात न करि सकै सत्ता ही के भार !![2] ॥३१॥

× × × ×

सत्ता के बिष - दंश की घटै न ज्वाला नेक,
समता की नवनीति को होत न जब लौं सेंक ![3] ॥३२॥

बसन और बास—का पता लगा, कि फिर, (तुलसी के शब्दों में)

उवरै अंत न होय निवाहू, कालनेमि जिमि रावन राहू !

(१) "बात-बात में धर्म की दुहाई देने वाले वर्ण-व्यवस्थापक जी कहाँ हैं ? आँखें खोल कर इस दारुण दृश्य को क्यों नहीं देखते ? उनका धर्म क्या हम दीन-दुखियों तक ही सीमित है ? क्या इन बड़ी-बड़ी तोंद वालों तक उस की पहुँच नहीं है ? इस धर्म में यदि वास्तव में कोई तत्त्व है तो क्यों नहीं गाज बन कर वह उन अत्याचारियों पर पड़ता है, जो रोटी माँगने पर पत्थर मारते और हमारी कष्ट-कथा सुन कर गोलियाँ चलवाते हैं ?"

—एक शिक्षित श्रमजीवी ।

(२) निम्नाङ्कित दोहे के आधार पर,

भूषन - भार सँभारिहै किमि यह तन सुकुमार ?
सीधे पाँव न धरि सकै शोभा ही के भार !

—बिहारी

(३) अनियंत्रित अर्थ-संचय के कुपरिणामों से परिचित होते हुए भी प्राचीन भारतीय विद्वान् इस महारोग का वास्तविक निदान

न कर सके ! 'स्वर्ण में कलियुग का वास होता है, अतः राजा परीक्षित ने ज्यों ही सोने का मुकुट पहना, कलियुग (शैतानी विचार) उस के सिर पर सवार हो गया, जिस से उसने निरपराध—शान्त—ऋषि को अकारण छेड़ते हुए मृत सर्प उसके गले में डाल दिया।' खेद ! ऐसी दशा में भी अनियंत्रित पूँजीवाद का नाश कर उसके स्थान में शुद्ध साम्यवाद स्थापित करने की आवश्यकता न प्रतीत हुई जिस से फिर ऐसे अनाचारों का होना असम्भव हो जाता !

हिन्दी—

का मुख लै हिन्दीन की बरनै कीर्ति ललाम ?
जिनके कारन जगत के केतिक देश गुलाम !![1] ॥३३॥

सप्त द्वीप नव खण्ड लौं जिनके बजे निसान,
जात 'कुली' बनि बनि तहाँ तिनके अब संतान !! ॥३४॥

× × × ×

(१) यह स्पष्ट है कि मिश्र, फ़ारस, तिब्बत, चीन तथा आयर्लैण्ड आदि देशों पर विदेशियों का प्राधान्य केवल भारत के ही बल पर है ! हमारे पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान में आज जो कोई भी सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार पनपने नहीं पाते इसका एक, कारण भारतीयों की पराधीनता भी है ! वाहरे भारत-निवासियो ! आप के आप गुलामी के गर्त में गिरे, और साथ में औरों को भी ले डूबे ! धर्म-प्राण जो ठहरे !! 'सत्य' और 'अहिंसा' के अवतार जो हैं !!!

अर्थ-वैषम्य—

जग की सुख-सम्पत्ति को मिलो न वारापार !
धन-हीनन के हेतु ही है संसार 'असार' !!' ॥३५॥
वित्तवान गुनवान है वित्तहीन गुनहीन !
महिमा वित्त समान कहुँ काहू की देखी न !! ॥३६॥

---

(१) "संसार असार है, सुख का कहीं नाम भी नहीं है ! मोह-माया तथा असन्तोष के वश होकर ही हम अकारण जग-धंधों में फंस-कर अपने समय और शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं ! जब मरने पर सारी धन-दौलत यहीं पड़ी रह जाती है, तब इस के उपार्जन का उद्योग करना भी नितान्त मूर्खता है, अतः क्यों न हम इस लोक की चिन्ता छोड़ कर अपना परलोक सुधारें ।" यही वह सूचि-वेध (इन्जेक्शन) है जिसके द्वारा नाना प्रकार के उलटे-सीधे विचार पंडितों, मुल्लाओं और पादरियों द्वारा हमारे मस्तिष्क में भरे जाते हैं ! हमें उस कल्पित परलोक-चिंतन की कुशिक्षा तो दी जाती है, किन्तु इस लोक की उन्नति का, जहाँ इस अमूल्य मानव-शरीर को जीवित रखना है, कोई पाठ कभी नहीं मिलता ! उधर उन धन-कुबेरों की बन आती है । वे इसी संसार को सर्वस्व—सार—समझ कर बेचारे श्रमजीवियों का रक्त-शोषण करते रहते हैं । तभी तो कहा जाता है कि यह धार्मिक ढको-सला ही दीन-दुखियों के कष्टों का एक मात्र कारण है !

हिन्दी—

का मुख लै हिन्दीन की बरनै कीर्ति ललाम ?
जिनके कारन जगत के केतिक देश गुलाम !![1] ॥३३॥

सप्त द्वीप नव खण्ड लौं जिनके बजे निसान,
जात 'कुली' बनि बनि तहाँ तिनके अब संतान !! ॥३४॥

× × × ×

---

(१) यह स्पष्ट है कि मिश्र, फ़ारस, तिब्बत, चीन तथा आयर्लेण्ड आदि देशों पर विदेशियों का प्राधान्य केवल भारत के ही बल पर है ! हमारे पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान में आज जो कोई भी सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार पनपने नहीं पाते इसका एक, कारण भारतीयों की पराधीनता भी है ! वाहरे भारत-निवासियो ! आप के आप गुलामी के गर्त में गिरे, और साथ में औरों को भी ले डूबे ! धर्म-प्राण जो ठहरे !! 'सत्य' और 'अहिंसा' के अवतार जो हैं !!!

अर्थ-वैषम्य—

जग की सुख-सम्पत्ति को मिलो न वारापार !
धन - हीनन के हेतु ही है संसार 'असार' !!' ॥३५॥
वित्तवान गुनवान है वित्तहीन गुनहीन !
महिमा वित्त समान कहुँ काहू की देखी न !! ॥३६॥

---

(१) "संसार असार है, सुख का कहीं नाम भी नहीं है ! मोह-माया तथा असन्तोष के वश होकर ही हम अकारण जग-धंधों में फंसकर *अपने समय और शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं ! जब मरने पर* सारी धन-दौलत यहीं पड़ी रह जाती है, तब इस के उपार्जन का उद्योग करना भी नितान्त मूर्खता है, अतः क्यों न हम इस लोक की चिन्ता छोड़ कर अपना परलोक सुधारें ।" यही वह सूचि-वेध (इन्जेक्शन) है जिसके द्वारा नाना प्रकार के उलटे-सीधे विचार पंडितों, मुल्लाओं और पादरियों द्वारा हमारे मस्तिष्क में भरे जाते हैं ! हमें उस कल्पित परलोक-चिंतन की कुशिक्षा तो दी जाती है, किन्तु इस लोक की उन्नति का, जहाँ इस अमूल्य मानव-शरीर को जीवित रखना है, कोई पाठ कभी नहीं मिलता ! उधर उन धन-कुबेरों की बन आती है । वे इसी संसार को सर्वस्व—सार—समझ कर बेचारे श्रमजीवियों का रक्त-शोषण करते रहते हैं । तभी तो कहा जाता है कि यह धार्मिक ढकोसला ही दीन-दुखियों के कष्टों का एक मात्र कारण है !

सो पंडित - वेदज्ञ, सोइ गुन - आगर, कुलवान,
दर्शनीय - वक्ता सोइ जेहि घर वित्त महान !![1] ॥३७॥

ज्ञानी ध्यानी योग - रत विद्या - बुद्धि - प्रवीन,
बात न बूझै तात हू है यदि वित्त - विहीन !! ॥३८॥

× × × ×

सहि असंख्य दारुन दुखन वरु लीजे वन - वास,
बंधु ! न कीजे बंधु सँग वित्त-विहीन निवास !![2] ॥३९॥

---

(१) निम्नाङ्कित श्लोक का हिन्दी रूपान्तरः—
यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतिवान्गुणज्ञः,
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति !

कहना न होगा कि इस पद्य में पूँजीवाद का नग्न चित्र खींच कर रख दिया गया है ! इस का स्पष्ट आशय यही है कि कुलीनता, पाण्डित्य, वेदज्ञता, वक्तृत्व और दार्शनिकता आदि महान गुणों का स्वयं कोई मूल्य नहीं है वरन् धन ही इन सब गुणों का कारण है— सर्वगुण काञ्चन के आश्रित हैं !

कहिये ! क्या लाभ उठाइयेगा अनेक सद्गुणों का संचय करके ? बरसों दंत कटाकट करके वेद पढ़ना किस काम आयेगा ? बिना धन का सब गुड़ गोबर के समान है !

वाहरे पूँजीवाद ! तूने सब गुणों पर पानी फेर दिया ! धातु के सफेद-पीले निर्जीव टुकड़ों ने सजीव मस्तिष्क पर कब्ज़ा कर लिया गया। अब भी कोई विचारशील व्यक्ति वैयक्तिक धन-संग्रह के कुपरिणामों से इनकार कर सकता है ?

(२) लीजिये, और सुनिये ! जंगली जानवरों के साथ रह व भले ही नाना प्रकार के संकट सह लीजिये किन्तु निर्धन बन कर ध भाई के साथ मत रहिये ! गोया धन का अनियंत्रित संचय शेर-बा

टका धर्म कर्महु टका टका परम पद पाय !
होत टका जा के न कर टकटकाय कहि हाय !!! ॥४०॥
वित्तवान धर्मी, सुधी, पापी वित्त - विहीन !
वित्ताराधन मैं सदा देख्यों विश्व विलीन !! ॥४१॥
'पैसा रचे अकास मग' है न असाँची उक्ति,
पैसा के बल पाइये कहुँ फाँसी ते मुक्ति !! ॥४२॥

आदि भयानक पशुओं से भी अधिक भयावनी चीज़ है, इस में संदेह ही क्या है !

(१) निम्नाङ्कित श्लोक पढ़िये:—

टका धर्मष्टका कर्मष्टका हि परमं पदम् !
यस्यगृहे टका नास्ति हा टका ! टकटकायते !!

लीजिये, जिस धर्म की इतनी दुहाई देकर हमें बहकाया जाता था वह भी धन का ही पर्यायवाची निकला ! आप में कितने ही दुर्गुण हों, पापों की पराकाष्ठा करके आप महापापी की पदवी प्राप्त कर चुके हों, किन्तु यदि आपके पास पैसा है, तो किस की मजाल है जो आप की ओर उँगली तक उठाने का दुःसाहस कर सके ! यह है अनियंत्रित पूँजीवाद की माया !

(२) 'गुणों का संचय किस काम आता है? धर्मात्मा बन कर क्या मिलता है ? सारी प्रभुता पैसे ही की है, अतः येनकेन प्रकारेण उसी के संचय में क्यों न लग जायँ ?' इस प्रकार के कुत्सित विचार मनुष्य समाज में फैलने लगते हैं, जब धन के उत्पादन और संचय पर राष्ट्र का नियंत्रण नहीं रहता ! फलतः जो समर्थ हैं वे बड़ी बड़ी नौकरियाँ करके, फैक्टरियाँ खोल कर, अथवा सट्टा, दलाली, जुवा-लाटरी आदि के द्वारा धन-संग्रह करते हैं ! जो असमर्थ हैं, वे चोरी करके, डाका मार कर, धन संग्रह करते हैं। और जो उन से भी निकृष्ट है, वे बेचारे

इन्दु वदन सुषमा - सदन गोल चतुर्भुज रूप !
विघ्न टरै बाधा हरै ध्यावत रूप ! अनूप !!'[1] ॥४४॥
अर्थ - विसमता-वस बढ़ो अब एतो संताप—
'बड़ो रुपैय्या विश्व महँ नहिं भैय्या नहि बाप !!'[2] ॥४४॥

छोटी छोटी नौकरियाँ, मजूरी, सेवा-टहल करके पैसा जुटाते हैं ! जिन्हें जमीन- आसमान के कुलावे मिलाना आता है, वे धर्म का दम्भ दिखा कर लोगों को ठगते और पैसा जमा करते हैं !

इन सब बखेड़ों के बदले, यदि धन (उपज अथवा माल) पर राष्ट्र का कब्ज़ा रहे, और सब की आवश्यकतानुसार साम्यवादी ढंग पर उसका बँटवारा कर लिया जाय, तो समय और शक्ति का अकारण अनर्थ न हो, और सभी सुख-चैन से रह सकें !

(१) स्वर्गीय रीवा-नरेश महाराज वेंकटरमणसिंह जी के हृदय पर आर्थिक विषमता का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा था, कि आप निम्नाङ्कित श्लोक का वही अर्थ किया करते थे, जो उपरोक्त दोहे में वर्णित है,

अखंडमंडलाकारं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्लोक में परमेश्वर के कल्पित चतुर्भुज विष्णुरूप की स्तुति है, किन्तु दोहे में "रूप" अर्थात् रुपया (रौप्य—चाँदी) ही उन का स्थानापन्न बन बैठा है !

(२) सोने-चाँदी आदि के टुकड़ों, रुपया-अशर्फी आदि मुद्राओं, का चलन समाज के कार्य संचालन में सहूलियत उत्पन्न करने के हुआ था। आदान-प्रदान में जब लोगों को असुविधा होने लगी, अन्न के मोल में लकड़ियों के गट्ठे अथवा पुस्तक के मोल में गाड़ी भर भूसा लाने ले जाने में अपार कष्ट जान पड़ने लगा, तब मुद्रा का प्रचार हुआ। किन्तु विषमता के दलदल में फँस कर आज वही

मुद्रानीति हमारी तबाही का कारण बन रही है ! लोगों ने उपयोग में लाने के बदले उन 'टुकड़ों' को गाड़ना, तिजोरियों में कैद करना, अथवा उन्हीं के सहारे और अधिक रुपया कमाना आरम्भ कर दिया ! यही अनियमितता सम्पूर्ण अनर्थों की जननी है !

इन्दु वदन सुषमा - सदन गोल चतुर्भुज रूप !
विघ्न टरै बाधा हरै ध्यावत रूप ! अनूप !![१] ॥४४॥
अर्थ - विसमता-वस बढ़ो अब एतो संताप—
'बड़ो रुपैय्या विश्व महँ नहिं भैय्या नहि बाप !![२] ॥४४॥

छोटी छोटी नौकरियाँ, मजूरी, सेवा-टहल करके पैसा जुटाते हैं ! जिन्हें ज़मीन- आसमान के कुलावे मिलाना आता है, वे धर्म का दम्भ दिखा कर लोगों को ठगते और पैसा जमा करते हैं !

इन सब क्लेशों के बदले, यदि धन (उपज अथवा माल) पर राष्ट्र का कब्ज़ा रहे, और सब की आवश्यकतानुसार साम्यवादी ढँग पर उसका बँटवारा कर लिया जाय, तो समय और शक्ति का अकारण अनर्थ न हो, और सभी सुख-चैन से रह सकें !

(१) स्वर्गीय रीवा-नरेश महाराज वेंकटरमणसिंह जी के हृदय पर आर्थिक विषमता का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा था, कि आप निम्नाङ्कित श्लोक का वही अर्थ किया करते थे, जो उपरोक्त दोहे में वर्णित है,

अखंडमंडलाकारं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्लोक में परमेश्वर के कल्पित चतुर्भुज विष्णुरूप की स्तुति है, किन्तु दोहे में "रूप" अर्थात् रुपया (रौप्य—चाँदी) ही उन का स्थानापन्न बन बैठा है !

(२) सोने-चाँदी आदि के टुकड़ों, रुपया-अशर्फी आदि मुद्राओं, का चलन समाज के कार्य संचालन में सहूलियत उत्पन्न करने के हुआ था। आदान-प्रदान में जब लोगों को असुविधा होने लगी, अन्न के मोल में लकड़ियों के गट्ठे अथवा पुस्तक के मोल में गाड़ी भर भूसा लाने ले जाने में अपार कष्ट जान पड़ने लगा, तब मुद्रा का प्रचार हुआ। किन्तु विषमता के दलदल में फँस कर आज वही

' न्यता को वे:.. नव निर्माण,
हमें दीखै .निज कल्याण !!' ॥४८॥

त कर आज यूरोप एशिया पर हावी हो
गे कि क्या वेदों में वे विद्याएँ हैं जिन के
त और जातीय जीवन को पराधीनता के
संसार में अपना अस्तित्व कायम रख सकते
हीं ! हमारी अपनी समझ में वेदों में केवल
: हो सकती हैं जो उस देश काल पात्र और
ो थीं, जब कि वेदों का निर्माण अथवा संग्रह
स बात को थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि
चार ऋषियों पर प्रकट हुए थे' तब भी उनके
क द्वारा—हमारी आधुनिक आवश्यकताओं की
आधुनिक युग में सुख पूर्वक रहने के लिए हमें
याओं' कला-कौशल, यंत्र-विज्ञान तथा अर्थ-शास्त्र
तावश्यकता है, अन्यथा हम पश्चिमी जातियों के
क काल तक जीते न रह सकेंगे !

वे और हम !

यंत्र अनेकन को करहिं वे नित आविष्कार,
पोथी-पत्रा ही हमहिं दीखहिं ज्ञानागार !! ॥४५॥

सुनहिं शब्द-अमरत्व-बल वे बैठे जग-बात,
फाँकहिं केवल फक्किका हम सब साँझ-प्रभात !![1] ॥४६॥

वे नूतन विज्ञान-बल उन्नति करति अघाय,
'सकल सत्य विद्यान की पुस्तक' हमहिं लुभाय !![2] ॥४७॥

---

(१) 'शब्द अमर है, इसका कभी नाश नहीं होता। एक बार जो शब्द उच्चरित अथवा ध्वनित होता है, वह सदा—सर्वदा वायु की तरङ्गों के साथ, अंतरिक्ष—ईथर—में फिरता रहता है।' इस बात को हम भारतीयों ने तो बहुत प्राचीन काल में समझ लिया था, जैसा कि हमारे दार्शनिक ग्रंथों से प्रमाणित होता है, किन्तु यूरोपियनों ने अभी हाल में ही समझा, और हम से बढ़ कर समझा। उन्होंने उपयोगितावाद के साँचे में ढाल कर 'शब्द की अमरता द्वारा रेडियो, तार, बेतार तथा ग्रामोफोन की रचना की, महापुरुषों के व्याख्यानों शब्दों को ज्यों का त्यों, उन के ही स्वरों और लहजों में, अनन्त काल तक के लिए कैद कर लिया ! किन्तु हम केवल यही कहते कहाते रह गये, कि — 'शब्दो नित्यः'' !

(२) ''वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है''।

—स्वामी दयानन्द।

यहाँ 'सब' शब्द पर हमें एतराज है। हम जानना चाहते हैं, कि क्या वेदों में आधुनिक यंत्र-विद्या', 'शस्त्रास्त्र-निर्माण-विद्या' तथा

करहिं सदा निज सभ्यता को वे नव निर्माण,
रूढ़ि - उपासन मैं, हमैं दीखै निज कल्याण !!' ॥४८॥

वे 'विद्याएँ' हैं जिनको सीख कर आज यूरोप एशिया पर हावी हो रहा है ? अथवा यों समझिये कि क्या वेदों में वे विद्याएँ हैं जिन के द्वारा हम अपने देश, समाज और जातीय जीवन को पराधीनता के प्रबल पाश से मुक्त करके संसार में अपना अस्तित्व कायम रख सकते हैं ? हमारा उत्तर है—नहीं ! हमारी अपनी समझ में वेदों में केवल वे ही विद्याएँ हैं और हो सकती हैं जो उस देश काल पात्र और सभ्यता के लिये उपयोगी थीं, जब कि वेदों का निर्माण अथवा संग्रह किया गया था। हम इस बात को थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि 'वेद सृष्टि के आदि में चार ऋषियों पर प्रकट हुए थे' तब भी उनके द्वारा—केवल उन्हीं के द्वारा—हमारी आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति असंभव है ! आधुनिक युग में सुख पूर्वक रहने के लिए हमें आधुनिक 'सत्य विद्याओं' कला-कौशल, यंत्र-विज्ञान तथा अर्थ-शास्त्र —के सीखने की आवश्यकता है, अन्यथा हम पश्चिमी जातियों के मुकाबले में अधिक काल तक जीते न रह सकेंगे !

(१) समाज का काम सुचारु रूप से चलाने के लिए समयानुसार समाज में अनेक रीति-रिवाजों की सृष्टि होती है, किन्तु देश काल-पात्र का विचार करके आवश्यक सुधार और परिवर्तन न करने से उन में सड़ायँद उत्पन्न हो जाती है ! वैधव्य-व्रत-पालन, पर्दा-प्रथा तथा बाल-विवाह अथवा वर्ण-व्यवस्था आदि का प्रचलन, सम्भव है, किसी समय समाज के लिए उपयोगी रहा हो, किन्तु अब, जब इन से उलटी हानि होने लगी, इनका दूर न करना श्रेयस्कर नहीं है। किसी उर्दू कवि ने क्या ही अच्छी बात कही है:—

रुकाव खूब नहीं तबअ़ की रवानी में,
कि बू फ़िसाद की आती है बन्द पानी में

वे और हम !

यंत्र अनेकन को करहिं वे नित आविष्कार,
पोथी-पत्रा ही हमहिं दीखहिं ज्ञानागार !! ॥४५॥

सुनहिं शब्द-अमरत्व-बल वे बैठे जग-बात,
फाँकहिं केवल फक्किका हम सब साँझ-प्रभात !![1] ॥४६॥

वे नूतन विज्ञान-बल उन्नति करति अघाय,
'सकल सत्य विद्यान की पुस्तक' हमहिं लुभाय !![2] ॥४७॥

---

(१) 'शब्द अमर है, इसका कभी नाश नहीं होता। एक बार जो शब्द उच्चरित अथवा ध्वनित होता है, वह सदा—सर्वदा वायु की तरङ्गों के साथ, अंतरिक्ष—ईथर—में फिरता रहता है।' इस बात को हम भारतीयों ने तो बहुत प्राचीन काल में समझ लिया था, जैसा कि हमारे दार्शनिक ग्रंथों से प्रमाणित होता है, किन्तु यूरोपियनों ने अभी हाल में ही समझा, और हम से बढ़ कर समझा। उन्होंने उपयोगितावाद के साँचे में ढाल कर 'शब्द की अमरता द्वारा रेडियो, तार, बेतार तथा ग्रामोफोन की रचना की, महापुरुषों के व्याख्यानों शब्दों को ज्यों का त्यों, उन के ही स्वरों और लहजों में, अनन्त काल तक के लिए कैद कर लिया ! किन्तु हम केवल यही कहते कहाते रह गये, कि—'शब्दो नित्यः'' !

(२) ''वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है''।

—स्वामी दयानन्द।

यहाँ 'सब' शब्द पर हमें एतराज है। हम जानना चाहते हैं, कि क्या वेदों में आधुनिक यंत्र-विद्या', 'शस्त्रास्त्र-निर्माण-विद्या' तथा

करहिं सदा निज सभ्यता को वे नव निर्माण,
"रूढ़ि - उपासन मैं, हमैं दीखै निज कल्याण !!" ॥४८॥

वे 'विद्याएँ' हैं जिनको सीख कर आज यूरोप एशिया पर हावी हो रहा है ? अथवा यों समझिये कि क्या वेदों में वे विद्याएँ हैं जिन के द्वारा हम अपने देश, समाज और जातीय जीवन को पराधीनता के प्रबल पाश से मुक्त करके संसार में अपना अस्तित्व कायम रख सकते हैं ? हमारा उत्तर है—नहीं ! हमारी अपनी समझ में वेदों में केवल वे ही विद्याएँ हैं और हो सकती हैं जो उस देश काल पात्र और सभ्यता के लिये उपयोगी थीं, जब कि वेदों का निर्माण अथवा संग्रह किया गया था। हम इस बात को थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि 'वेद सृष्टि के आदि में चार ऋषियों पर प्रकट हुए थे' तब भी उनके द्वारा—केवल उन्हीं के द्वारा—हमारी आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति असंभव है ! आधुनिक युग में सुख पूर्वक रहने के लिए हमें आधुनिक 'सत्य विद्याओं' कला-कौशल, यंत्र-विज्ञान तथा अर्थ-शास्त्र —के सीखने की आवश्यकता है, अन्यथा हम पश्चिमी जातियों के मुकाबले में अधिक काल तक जीते न रह सकेंगे !

(१) समाज का काम सुचारु रूप से चलाने के लिए समयानुसार समाज में अनेक रीति-रिवाजों की सृष्टि होती है, किन्तु देश काल-पात्र का विचार करके आवश्यक सुधार और परिवर्तन न करने से उन में सड़ाँयँद उत्पन्न हो जाती है ! वैधव्य-व्रत-पालन, पर्दा-प्रथा तथा बाल-विवाह अथवा वर्ण-व्यवस्था आदि का प्रचलन, सम्भव है, किसी समय समाज के लिए उपयोगी रहा हो, किन्तु अब, जब इन से उलटी हानि होने लगी, इनका दूर न करना श्रेयस्कर नहीं है। किसी उर्दू कवि ने क्या ही अच्छी बात कही है:—

रुकाव खूब नहीं तबअ् की रवानी में,
कि बू फ़िसाद की आती है बन्द पानी में।

वायुयान जलयान उन निरमाये नभयान,
हम अपने छकड़ान पै अब लौं करत पयान !! ॥४९॥

नूतन वस्तु बनाय बहुत वे नित भरत बजार,
करत खिलौना काठ के अनगढ़ हम तैयार !! ॥५०॥

निज निर्मित नव वस्तु बहु बेचन हित निरबाध,
संधानत नव पैंठ वे लाँघि समुद्र अगाध ! ॥५१॥

किन्तु अभागे हिन्द के कूढ़ापंथी भूत,
यात्रा अजहुँ विदेश को समझैं हाय अछूत !![1] ॥५२॥

× × × ×

---

(१) शहरों के निकट किसी समाधि अथवा स्मारक के नाम से
[illegible] ग्रामों में किसी मुड़कटी भवानी' अथवा ग़ाज़ी, पीर, मदार के
[illegible] से लगाने वाले मेलों में हमारी देशी दस्तकारी का प्रदर्शन होता
बेचारे असहाय-अशिक्षित 'कारीगर' बड़े परिश्रम से मिट्टी, काठ
[illegible] कागज़ के खिलौने (हाथी, घोड़े, पालकी, बरतन, मोटर, चक्की
[illegible] आदि) बना कर लाते और दिन दिन भर धूप में बैठे धूल
[illegible] करते हैं। कोई पूछता ही नहीं ? पूछे कैसे ? उधर शहरों के
[illegible] मर्चेण्ट' जो सस्ते सुन्दर और टिकाऊ जापानी खिलौनों से
[illegible] दूकानें सजाये बैठे हैं ? यहाँ प्रायः सारी चीजें इटली, जापान
[illegible] अथवा जर्मनी की भरी पड़ी है ! कारण क्या है ? यही कि
गुलाम हैं ! हमारे बाजारों पर विदेशी बनियों की बपौती है।

[illegible] में गये हुए एक प्रसिद्ध नेता जब भारत
[illegible] (गाय का दूध, दही, घृत,
[illegible] बाकायदा शुद्धिसंस्कार किया

वे मुट्ठी भर किन्तु हम पूरे पैंतिस कोटि !
(तौ हू सुख - सम्पत्ति सब वे ही जात सपोटि !!) ॥५३॥

उनके शासन में सुन्यो रवि को अस्त न होय,[1]
हम अपनो हू घर अहो ! बैठे कर तें खोय !! ॥५४॥

राज - काज मैं धर्म वे समझैं सदा अमान्य,
अब लौं देत स्वराज्य पै हम धर्महिं प्राधान्य[2] !! ॥५५॥

---

(१) साम्राज्यवाद का प्रचार करने के लिये भारतीय स्कूलों के बच्चों को सिखलाया जाता है कि अंग्रेजी शासन में सूरज कभी अस्त ही नहीं होता ! दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अंग्रेजों की गुलामी का फौलादी पंजा चौबीसों घटे दुनिना के किसी न किसी अभागे देश पर पड़ता ही रहता है ! गुलामी की कुत्सित प्रथा का अन्त हो जाने पर भी गुलामी का व्यवसाय करने वाला व्यक्ति वा समूह जिस प्रकार घोर घृणा का पात्र समझा जायगा, ठीक उसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के इस मध्य भाग में, जब कि सत्यानाशी साम्राज्यवाद का अन्त हो कर संसार में शुद्ध जनवाद की दुंदुभी बजने वाली है, साम्राज्य-विस्तार की सराहना तो केवल साम्राज्यवादी ही कर सकता है !

चक्रवर्ती तथा सम्राट् आदि शब्दों को अतीत काल में भले ही गौरवमय स्थान प्राप्त रहा हो, किन्तु अब तो इन को छाँट-छाँट कर पुस्तकों से निकाल देने की आवश्यकता है।

(२) भारत के गोरे शासक ईसाई धर्म के अनुयायी हैं, किन्तु नाम मात्र को ! बाइबिल में लिखा है। यदि कोई तेरे बाएँ गाल पर थप्पड़ मारे तो तू दाहिना भी उस के सामने करदे, यदि कोई तुझ से तेरा अंगरखा माँगे तो तू उसे अपनी रजाई भी दे डाल, किन्तु क्या

श्वान सदा उन के लहैं प्रातराश - पय - केक !
मक्की की रोटी भखैं बाल हमारे सेंक !! ॥५६॥

× × × ×

उनकी भाषा - भेष हू समझे जात प्रधान !
वे भाषहिं सो सत्य है असत हमारो ज्ञान !! ' ॥५७॥

कभी किसी ने देखा है कि शासन-कार्य में अंग्रेजों ने अपनी इस उदार नीति का लघांश भी निबाहा हो ?

इधर एक हम हैं जिन में अभी तक अस्वाभाविक धर्म की भावना कूट कूट कर भरी हुई है ! अभी उस दिन महामना मालवीय जी ने पंजाब प्रांतीय सनातन धर्म सम्मेलन के अध्यक्ष पद से रावलपिण्डी में कहा था—"हमारा धर्म इतना व्यापक, विशाल तथा महान् है कि हम उसके सामने स्वराज्य को भी तुच्छ समझते हैं।"

ये हैं हमारे उन नेताओं के ख्यालात, जिनके हाथों में आज सार्वजनिक आन्दोलन की बागडोर है ! सदियों की गुलामी ने हमारे मस्तिष्क को कितना विकृत कर दिया है कि हमें स्वराज्य—आज़ादी का मूल्य इतना कम जँच रहा है ! अच्छा है महाराज ! आप की इच्छा सदा पूरी होती रहेगी !

(१) आप देशी भाषाओं में कितनी ही ऊँची और गम्भीर बातें कीजिये, किन्तु उनका उतना मूल्य नहीं होगा जितना अंगरेजी में कहने से होता। शासक और शासित में जितना भेद है उतना ही उनकी भाषा, भाव और भेष में भी परिलक्षित होता है। रवीन्द्र की रचनाएँ अँगरेजी में अनूदित होकर ही हमें आकर्षित कर पायी हैं, कृष्ण मूर्ति की 'टाक्स' भी अब उसी भाषा में होती हैं।

उन-घर ऊँच न नीच कोउ सब जन पावन - पूत,
ऊँच-नीच, बड़-छोट, हम मानत छूत - अछूत[1] ॥५८॥

समता के बन्धुत्व - बल वे सब रहे मिलाय,
घोर बिसमता - बस रहे हम सब ही बिलगाय !! ॥५९॥

× × × ×

वे शासक, हम दास हैं ! वे सुखिया, हम दीन !!
वे स्वतन्त्र स्वाधीन हा ! हम उनके आधीन !!! ॥६०॥

---

(१) एक प्रसिद्ध वैदिक मिश्नरी, जो लंडन के किसी होटल में ठहरे हुए थे, जब भोजन करने बैठे, तो क्या देखते हैं कि वह मेहतर भी, जिसे उन्होंने सबेरे होटल में सफाई करते देखा था, उनके बराबर बैठा हुआ उसी मेज पर भोजन कर रहा है ! संस्कारों के वशीभूत होने के कारण पहिले तो इच्छा हुई कि उससे ललकार कर कह दें कि तू मेरे बराबर क्यों बैठा है ? किन्तु फिर स्मरण आया कि यह भारत नहीं इंगलैंड है, अतएव बेचारे दम साधकर रह गये !

लंका शहर

> कौन कहै भारत भयो निपट दुखी - कंगाल ?
> अबैन को आवत जहाँ अजहुँ विदेसी माल ?' ॥६१॥

---

(१) अदूरदर्शिता तथा निर्लज्जता का पाठ किसी को पढ़ना हो तो वह हम भारतीयों से पढ़ले ! भला जहाँ लाखों-करोड़ों मनुष्य बेकारी और भूख से मर रहे हों, वहां इतनी अधिक मात्रा में विदेशी—सो भी अनावश्यक—वस्तुओं में देश का करोड़ों रुपया जाना क्या हमारी महान मूर्खता का द्योतक नहीं है ? नीचे की तालिका से आप को विदित होगा कि सन् १६३२-३३ में किस कदर अनावश्यक वस्तुओं में हमारा कितना बहुमूल्य धन विदेश गया है।

वस्तु	लाख रुपयों में	वस्तु	लाख रुपयों में
साबुन	८३	खिलौने तथा बच्चे गाड़ियां	४८
खाद्य पदार्थ	२७६	चूड़ियाँ	४०
शराब और मद्य	२२५	नकली मोती	१२
तम्बाकू-सिगरेट	४७	टेबिल वेयर काँच का माल ...	५
तैयार कपड़े	८२	केसर-कपूर	३५
बूट जूते	५२	फल-शाक भाजी	१२४
सुपारी	११४	मोमबत्ती तेल आदि	१४
लौंग	३५	आतिशबाजी	८
लकड़ी	३३	शृंगार सामग्री	६३
		योग	११११

झीने बसन बनाय जनु दीन्हें यहि उद्देसः—
होय द्रव्य के संग ही लज्जा हू निस्सेस !! ॥६२॥

× × × ×

कछु खैंचत 'लंका शहर' कछु इटली जापान !
दोहन दुखिया देश को दीखै दसहु दिसान !! ॥६३॥

स्मरण रहे, यहां इसी वर्ष आये हुए ४७ करोड़ के कपड़े तथा ऐसे ही अन्य सामान की तालिका नहीं दी गयी है !

(नोट—यह आँकड़े 'विशाल भारत' की आषाढ़ १९९१ की संख्या में प्रकाशित श्री श्यामनारायण कपूर के लेख 'स्वदेशी ही क्यों ? से लिये गये हैं—लेखक)

जनता जनार्दन !

कहत सयाने सत्य ही जनता की पहिचान—
'गहत गैल गुनि ज्ञान की तजि भेड़िया-धसान' । ॥६४॥

× × × ×

निर्णय हेत - अहेत को यदि करते निरधार,
परते अवनति-खार क्यों मरते बनि बेकार !![1] ॥६५॥

विद्या-वैभव न्यून नहिं बल-विक्रम कम नाहिं,
अपने हू पर देश महँ निस-दिन धक्का खाहिं !! ॥६६॥

× × × ×

---

(1) कुछ तो हमारी व्यापक निरक्षरता और कुछ रूढ़िजनित कुसंस्कारों के कारण हमारे हृदयों से किसी भी भली या बुरी बात का कारण सोचने की प्रवृत्ति लुप्त सी हो गयी है ! सड़कों पर गड़े हुए मील के किसी पत्थर पर थोड़ा सिन्दूर लगा कर एक माला डाल दीजिये, फिर देखिये भक्तों का कैसा ताँता लग जाता है !

एक पुराने ठकठे पेड़ के भीतर किसी ने रात को आग लगा दी। गूदा तो था ही, चट चटा कर जल उठा। चंदन आदि की कमी भी बड़े तड़के ही पूरी कर दी गयी ! फिर क्या था सुबह से ही भक्तों और दर्शनार्थियों का ताँता लग गया ! ज्वाला जी साक्षात् रूप धर कर प्रकट हुई हैं ! इतनी महिमा बढ़ी कि आज वहाँ लाखों की लागत से एक विशालकाय मंदिर बना हुआ है, जिसकी चढ़ौती बीसियों हज़ार आ जाता है !

जौ चाहौ शान्ति न घटै सुख भोगै संसार,
कबहुँ न भूलि दुखाइयो तात ! कृपक-श्रमकार । ॥६७॥

स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में अनेक प्रसिद्ध मंदिरों की पोल खोली है जिन के देवताओं में से कोई हुक्का पीता था किसी का रथ अपने आप चलाता था, और किसी का देवता समय समय पर कलेवर बदला करता था ! कहना न होगा कि जनता की अविचार-शीलता के कारण ही ऐसे ढोंग-ढकोसले चल सकते हैं !

क्या इसी भेड़ियाधसानी के कारण हमें शताब्दियों से पराधी-

आर्य समाज

दीन-दुखिन के देखि दुख द्रवित भये हरि, हपि—
दिये दया करि देश को दयानंद देवर्षि ! ॥६८॥

× × × ×

सब की उन्नति में समुझि निज उन्नति कौ सार,
सत्य सरल समवाद कौ नियम कियो निरधार !' ॥६९॥

---

(१) आर्य समाज के दस नियमों में से नवाँ यह है;
"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये,
किन्तु सब की उन्नति को अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"
—स्वामी दयानंद सरस्वती

कहने की आवश्यकता नहीं कि आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द के हृदय में वैयक्तिक उन्नति के लिये कोई विशेष स्थान न था, वरन् वे 'सब की उन्नति में अपनी उन्नति' समझना श्रेयस्कर समझते थे ! इस से अनुमान किया जा सकता है कि स्वामी जी के हृदय में साम्यवाद के लिये बहुत व्यापक सद्भावना विद्यमान थी। और सम्भव है, यदि वे अपनी स्वाभाविक आयु तक जीने पाते, जो कि वस्तुतः ही उनकी शारीरिक प्रतिभा तथा ब्रह्मचर्य-बल के कारण बहुत अधिक होती, तो उनके द्वारा साम्यवाद के प्रचार में बड़ी सहायता मिलती !

किन्तु खेद है, इतने बड़े सुधारक और सब की उन्नति के समर्थक एक प्रतिभाशाली महान आत्मा को हठधर्मियों के कुचक्र में पड़ कर अकस्मात् ही काल के गाल में समाना पड़ा !

सब को सुख-दुख,हानि-हित सब को सम अधिकार,
करै निरूपन तेहि कहैं आर्य समाज उदार ! ॥७०॥

× × × ×

होम करै तन-प्रान कौ निज जठरागि जराय !
रोम - रोम रोटी रटै ओम कढ़ै कै हाय ? ॥७१॥

सम्प्रदाय के जाल जिन बाँध्यो समन शरीर !
तृन देखहिं दूजे - दृगन नहिं अपने शहतीर !! ॥७२॥

निरमाये विन यंत्र यह संकट सकहु न टार,
पढ़ि पढ़ि वेद अपार बरु पीटहु नित्य कपार !![1] ॥७३॥

बढ़ै विसमता-व्याधि-बस बहु दारिद - संताप !!
विविध 'पुरबुले पाप' कहि बहकावत क्यों आप ?[2] ॥७४॥

---

(१) यह वैज्ञानिक आविष्कार का युग है। इस युग में वही जाति जीवित रह सकती है जो नित नये यंत्रों का आविष्कार करके कला-कौशल तथा कल-कारखानों द्वारा देश की आर्थिक उन्नति करती है। संसार के सब देशों में परस्पर होड़ लग रही है। नव उन्नति की दौड़ में जो जितना ही आगे है, आज उस का उतना ही अधिक कल्याण सम्भव है। जापान, टर्की और जर्मनी सब की उन्नति कल से आरम्भ हुई है, किसी के हाथ में न वेद हैं न उपनिषद्, वरन् सब यंत्रों के आविष्कार में तल्लीन हैं। ऐसी दशा में केवल वेद-वेद चिल्लाने से न तो वेदों का ही उद्धार होगा और न सर्वसाधारण की रोटी का सवाल हल हो सकेगा। ये तो स्वाधीनता और अमन चैन की बातें हैं ! खेद है, आर्यसमाज जैसी प्रगतिशील संस्था ने अभी तक इस सच्चाई को नहीं समझा !

(२) भला इस से अधिक मूर्खतापूर्ण प्रचार और क्या हो सकता

है ? पूँजीवाद तथा साम्राज्य-लोलुपता के दो प्रबल पाटों के बीच निरन्तर-पिसने वाली सर्वसाधारण जनता को उस के जन्म सिद्ध अधिकारों—असन, वसन और वास—की सुविधाओं से यह कह पराङ्मुख किया जाय कि यह उसके पूर्व जन्म के पापों का फल है !

जी नहीं महाशय जी ! यह केवल धाँधली, अंधेर खाता और असमानता का विषैला विष है जो हमें जला रहा है ! आप नाहक

द्विजाति अनन्यता—

भागहिं भ्रम के भूरि भय जागहिं भारत - भाग,
द्विजवर! यदि न अलापहीं जाति-पाँति के राग! ॥७५॥

× × × ×

इक पूँजीपति निर्दयी, इक श्रमकारी दीन!
जाति-पाँति कहुँ विश्व में इनतें भिन्न लखी न!! ॥७६॥
पोषक पोंगा पंथ के देखहिं दृगन उघार,
हैं द्वै जाति जहान में पूँजीपति - श्रमकार![1] ॥७७॥

---

(१) जिस प्रकार चार पैरों से चलने वालों की जाति चौपाया है, पंख से उड़ने वालों की पक्षी, इसी प्रकार दो पैरों से चलने वाले इस दुपाये प्राणी का नाम मनुष्य है, बस। इस से भिन्न इस की और कोई जाति नहीं है। ब्राह्मण, अहीर, नाई, धोबी आदि पेशे हैं—जातियां नहीं। एक मनुष्य जो आज अध्यापक अथवा उपदेशक है, ब्राह्मण है। कल जूते बनाने लगा, मोची होगया। परसों कपड़े धोने से धोबी, आदि।

हाँ आर्थिक विषमता के कारण हम मनुष्यों में दो श्रेणियां पाते हैं। एक वे, जो धनसम्पन्न हैं। जिन के बड़े बड़े कल-कारखाने, बैंक व्यवसाय, तथा रेल-जहाज हैं, और जो दूसरों की मेहनत से मोटे हो रहे हैं! दूसरे वे हैं जो दीन-हीन, भूखे-नंगे और अपढ़ अपाहिज हैं, जिन के 'असन-बसन और वास' की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है! बेचारे दिन भर मेहनत करके वस्त्र बनाते, अन्न उपजाते अथवा

कल-कारखाने चलाते हैं, किन्तु न कभी भर पेट भोजन पाते हैं न तन भर कपड़े ! इन दो श्रेणियों को ही हम दो जाति (द्विजाति) के नाम से पुकार सकते हैं, अर्थात पूँजीपति और श्रमकार।

इन से भिन्न जातियों की कल्पना सर्वथा अस्वाभाविक है, जो हमें परस्पर लड़ाते रहने के लिये की गयी है।

के अपनाने से हमारा लाभ है और किस से हानि। आज आँख मूँद कर हम ने जो विदेशियों का अनुकरण करना आरम्भ किया है, इस से तो हमारी उलटी हानि हो रही है! हम ने अंग्रेज़ों के महान गुणों की ओर देखा भी नहीं, केवल उन के फ़ैशन आदि की नकल कर ली, बस!

जापान, टर्की आदि सब उन्नत देशों ने ऐसा नहीं किया। एक सिरे से दूसरे सिरे तक जापान यूरोप-मय हो रहा है, फिर भी जापानियों का स्वाभिमान सराहनीय है! क्या जापान इन्हीं कारणों से इतना उन्नतिशील हो रहा है? देखने से तो यही ज्ञान पड़ता है कि गुरु (यूरोप) गुड़ है, तो चेला (जापान) चीनी!

शिक्षा—

कर्त्तव्याकर्त्तव्य गुनि गहैं प्रशस्त विचार,
रहैं सदा सुविवेक - रत साँची शिक्षा - सार ! ॥८३॥

× × × ×

शिक्षा को सिद्धान्त अब भयो भृत्तता भूरि !
शुभ सबूट पद पोंछिबो साहब के भरपूरि !! ॥८४॥

वह शिक्षा केहि काम की जनि काहू पै होय !
लहै सहस्रन व्यय किये काम न आवै कोय !![1] ॥८५॥

---

(१) भारत के शिक्षित-समाज में इतनी व्यापक बेकारी का एक कारण यह भी है कि यहाँ के विद्यालयों में 'अर्थ करी विद्या' का सर्वथा अभाव है ! साबुन, तेल, क्रीम, ब्रश, पाउडर, लेवेण्डर लिफ़ाफ़े और सुइयाँ आदि का बनाना हमारे स्कूल-कालेजों की शिक्षा का एक अंग बन जाता तो देश की बेकारी दूर होने के साथ ही -साथ देशी कला-कौशल और उद्योग-धंधों को प्रबल प्रोत्साहन मिल सकता है, किन्तु करे कौन ? सरकार ? अरे राम राम ! उसके पास इस काम के लिये पैसा कहाँ है ?

अब रहे देश के माननीय नेता गण, सो उन के सामने केवल एक चरखा है, बस ! उन की समझ में शायद अभी तक नहीं आया कि मनुष्य सीखी हुई बात को भुलाने में उतना शीघ्र सफल नहीं होता जितना नयी बात के सीखने में !

हैं शिक्षित भूले कृषिहिं रही न श्रम की बान !
करत किसानन सों घृणा श्रमिकन सों अभिमान !!॥८६॥

× × × ×

शिक्षा के भण्डार की लखी अनोखी बात,
एक न पावत शुल्क बिन एकन को न सुहात !!' ॥८७॥
ससक-सृगालन की कथा केतिक दयीं पढ़ाय !
अब गुरु ! मोहिं सिखाइये कछु नीको व्यवसाय !!'॥८८॥

× × × ×

लहैं सुशिक्षा हू सदा रहैं कूप - मण्डूक
पावत पुंज प्रकाश पै जागत ज्यों न उलूक !!'॥८९॥

जेहि शिक्षा-बल बहु चढ़े नव उन्नति - सोपान,
गहैं फिरत हम ताहि लै अब लौं वहै कुज्ञान !! ॥६०॥

उन का मस्तिष्क भी कूप-मण्डूकत्व की ओछी भावना से अविकसित और अविचारपूर्ण ही रहा, तो उन की शिक्षा का अर्थ 'घर के धान पयाल में मिलाने' के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? कानपुर के विद्यार्थियों की एक सभा में गत वर्ष पं० जवाहर लाल जी ने ठीक ही कहा था—

ग्रंथ-कीट बनि व्यर्थ क्यों करत सुबुद्धि - विनास
खोलहु द्वार दिमाग के पावहु पुण्य प्रकास

यौवन को गुरुता भरी सहज सजीली देह,
जरा जरावत ही भयी माहुर-माटी-खेह !! ॥९६॥

× × × ×

भव - सागर के भौंर में गयी जवानी खोय !
एक बार पावौं बहुरि लावौं अंगनि गोय !! ॥९७॥

सुघर गात, साहस प्रबल रहित विकार विपाद !
मन ह्वै जात अजौं वहै वा तरुणाई-याद !![1] ॥९८॥

सघन कुंज -छाया सुखद शीतल मंद समीर !
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर !!

---

(१) निम्नाङ्कित दोहे की छाया में—

सघन कुंज छाया सुखद शीतल मंद समीर !
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर !!

—बिहारी ।

चिता—

नित्य सँवारयो नेह सों करि केतिक शृंगार !
हा हा ! केश - कलाप सो काँप्यो लखि अंगार'!!॥९९॥
नित खवाय बहु वस्तु भलि बदन बनायो घाम !
चिता जरायो सो पिता चुनि चुनि चंदन-दाम !!'॥१००॥

---

(1) अकाल मृत्यु का हृदय विदारक दृश्य आप को आस पास दिखाई देता है ! बच्चों की मृत्यु-संख्या का औसत तो हमारे देश में संसार भर से अधिक है ! प्रति सैकड़ों में से पचास-साठ और अस्सी तक बच्चे अपने जनक-जननी को रोते-बिलखते छोड़ कर काल के गाल में समा जाते हैं ! क्या आप ने कभी ध्यान से सोचा है कि इस दुःखा-वस्था का यथार्थ कारण क्या है ? कलियुग ? दुर्भाग्य ? अथवा पूर्व-जन्म ? नहीं, यह बातें तो बच्चों के बहलाने के लिये 'हौआ' जैसी हैं ! यथार्थ कारण कुछ और ही है । अच्छा, आप यह तो जानते ही हैं कि यह मरने वाले बच्चे अधिकतर किन के होते हैं ? धनियों रईसों पूँजीपतियों अथवा मजा-भोगियों के ? नहीं, बल्कि उन दीन-हीन मज़दूर किसानों के [illegible] अन्न-वस्त्र के लिये रोटी-[illegible] हो गया है !! [illegible], [illegible] कि [illegible] का [illegible] मृत्यु का [illegible] क्या है [illegible] !!

छठा शतक

व्यथित विहार !

पूजित भयो जहान जो बुद्ध - पदाम्बुज धार,
आह ! अचानक आजु सो खँडहर बनो विहार !![1] ॥ १ ॥

× × × ×

भरी अहिंसा की सुधा करी तथागत पूत,
उजरी भूमि विहार की उजरी छूतन - छूत !![2] ॥ २ ॥

---

(१) गत १५ जनवरी सन् १९३४ ई० की दोपहर के दो बजे वह सर्वनाशकारी भयानक भूकम्प हुआ जिस ने विहार का संहार करके उसे खँडहर बना दिया !!

(२) भूकम्प के कारणों पर प्रकाश डालते हुए विश्व कवि रवीन्द्र-नाथ ठाकुर ने कहा था कि वह प्रकृति की अंध शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष का कुपरिणाम था। जिस का खंडन विश्व-वंद्य महात्मा गांधी ने यह कह कर किया था कि प्रकृति की अंध शक्तियाँ भी ईश्वर की सर्व शक्तिमयी सत्ता के अधीन हैं, अतः जब संसार की कोई छोटी से छोटी घटना भी ईश्वरेच्छा के बिना नहीं घट सकती, तब इतने भयंकर विकराल भूचाल को ईश्वरेच्छा से शून्य—अंध शक्तियों द्वारा संगठित—कैसे कह सकते हैं ? तो फिर इस भूचाल का कारण क्या था ?

महात्मा जी ने तो इसे उस महा पाप का प्रायश्चित्त और दण्ड बतलाया है जो हम सहस्रों वर्षों से कोटि-कोटि श्रमजीवियों को अछूत

करि करि भिक्षु बिहार जहँ सरसायो सुख - सार,[1]
साँची कहौ बिहार ! हौ अब तुम वहै बिहार ? ॥ ३ ॥

× × × ×

वह भारत की बाटिका, वह वैशाली - शान ![2]
वह मिथिला-सी सुरथली चली रसातल जान !! ॥ ४ ॥
छिन मैं चम्पारण्य की सुषमा भयी बिलीन !
मधुबन - सी वह मधुबनी बनी अनमनी—दीन !! ॥५॥

बना कर कर रहे हैं ! इन की महान सेवाओं के बदले हमने जो अनीति और अत्याचार उन के साथ शताब्दियों से कर रक्खा है, उसी का दण्ड हमें वर्तमान भयानक भूकम्प के द्वारा दिया गया है ! अस्तु !

इन पंक्तियों का लेखक भी महात्मा जी की इस विचार शैली से सहमत होकर निम्नांकित दोहे द्वारा कहता है—एवमेव !

'महाभूत - संक्षोभ' नहिं अंध शक्ति - संघर्ष !
आह अछूतन की कढ़ै ! तिनके यह निष्कर्ष !!

(१) एक वह भी सुख-समय था जब भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार करके संतप्त हृदयों में शीतलता का स्रोत बहाने वाले बौद्ध भिक्षुओं ने विहार को ही सर्व प्रथम अपनी कार्यस्थली बनाया था ! इन असंख्य बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के बहुसंख्यक विहारों (निवास-स्थानों) के कारण ही इस प्रदेश का नाम विहार पड़ा था !

(२) उत्तरी विहार की सुरम्य स्थली को स्वयं अपनी आँखों से देखने का जिन्हें सौभाग्य हुआ है, वे ही जान सकते हैं कि वह सुजलां-सुफलां भूमि कितनी रमणीया, कितनी उर्वरा, तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की कैसी साक्षात् प्रतिमा थी !

(३) मुफफ्फरपुर, मोतीहारी, मधुबनी, मुँगेर तथा दरभंगा, सीतामढ़ी आदि सुरम्य नगरों का नष्ट होना यद्यपि महान् शोकजनक बात

काल - दिवस वाको कहैं किम्वा क्रान्ति कराल !
अथवा अपने पाप कौ प्रायश्चित्त बिशाल !!॥ ६ ॥

× × × ×

औरहु कृशित किशान को चपरो करो बनाय !
साँचहुँ दुर्बल - दीन को घातक दैव लखाय !!' ॥ ७ ॥

× × × ×

है, किन्तु इन नगरों के आस पास की सहस्रों मील लम्बी-चौड़ी उप-जाऊ भूमि और वहाँ बसे हुए ग्रामों का सर्वथा सत्यानाश हो जाना एक ऐसी भीषण समस्या है जिस का शीघ्र सुलझ सकना सरल नहीं है ! देखें देश के नेतागण तथा माँ-बाप सरकार इस जटिल प्रश्न को किस प्रकार हल करते हैं !

(१) 'दैवो दुर्बलघातकः'

जैसा कि इस पुस्तक के विभिन्न स्थानों में दिखलाया गया है, भारत के मुजदूर-किसानों की दशा वैसे ही हीनतम हो रही थी—करोड़ों को आधे पेट और करोड़ों को भूखे पेट रह कर (घास पत्ते आदि खा खा कर) दिन काटने पड़ते थे, उस पर भी इन बेचारों को इस भूकम्प के रूप में दैवी कोप का सामना करना पड़ा !

पटना के कलेक्टर ने एक बार कहा था—'जो किसान सात बीघा जमीन जोतता है वह केवल एक बार भर पेट खा सकता है।' (Can take one full meal instead of two !) गया के कमिश्नर ने कहा था कि—

"Fourty percent of the population are insufficiently fed,"

अर्थात्—"चालीस प्रतिशत मनुष्य भर पेट खाने को नहीं पाते !"

—देश की बात ।

कहुँ सहसा भूगर्भ तें भयो भयानक रोर !
मारक जारक धूम कहुँ प्रकट भयो भुव फोर !! ॥८॥

ह्वै कम्पन कहुँ भूमि पै जहँ तहँ फटे दरार !
प्रगटी बालू - रेत, कहुँ प्रलयंकर जल - धार !! ॥९॥

भूमि सहस्रन मील लौं छिन,मैं गयी कँपाय !
दै झटके पटके सबै गिरे भौन भहराय !! ॥१०॥

भूकम्प न कहिये अरे ! नहिं भूचाल कराल !!
भारत गारत करन कहँ आयो दैव दुकाल !!! ॥११॥

जिन जाने बिज्ञान - बल बहुतक बिश्व - बिधान,
तेऊ प्रबल प्रपंच यह रंचहु सके न जान !![1] ॥१२॥

बाल - बृद्ध-नर - नारि की संख्या आह ! अथोर,
आय अचानक छिनक मैं दुर्दिन लयी बटोर !![2] ॥१३॥

---

(१) पश्चिमी वैज्ञानिकों ने आँधी, मेह, भूकम्प आदि प्रकृति की आकस्मिक महान घटनाओं को बतलाने वाले यंत्रों का निर्माण किया है ! शिमला, देहरादून आदि स्थानों में सरकार की ओर से ऐसे यंत्र रक्खे रहते हैं, जो यह बतला देते हैं कि यहां से इतनी दूर अमुक दिशा में इस प्रकार की घटना घटी है ! धन्य विज्ञान ! और धन्य हैं वे वैज्ञानिक जो 'सब सत्य विद्याओं के पुस्तक' पढ़े बिना ही इतना अद्भुत अविष्कार कर सके !

(२) बिहार के भूकम्प से मरने वालों की ठीक संख्या का पता तो अभी तक नहीं लग सका, किन्तु जानकार लोगों का अनुमान है, कि इस भीषण नर–संहार में तीन हजार पुरुष,स्त्री तथा बालक अवश्य मरे होंगे !

पायँ - अछत अबला किती सकीं बचाय न प्रान !
पर्दा के जनु पाप पै आप भयीं बलिदान !![1] ॥१४॥
मरे, तरे दुख - सिंधु तें सोये मृत्यु - अँकोर !
जियत जरहिं जठरागि की जालिम ज्वालन-जोर !! ॥१५॥

× × × ×

धसे दरारन में किते ! केतिक बूड़े बारि !!
मलवा के तल तें किते खनि काढ़े नर-नारि !!! ॥१६॥
उर छुपकाए बाल बहु भूखन भयीं निढार—
छत - विच्छत जननी किती काढ़ीं मलवा - टार !![2] ॥१७॥

× × × ×

---

(१) रूढ़ि राक्षसी ने सब जगह हमारा सत्यानाश किया है। फिर भी हम ऐसे अंधे हैं कि अभी तक इससे अपना पीछा न छुड़ा सके ! कहते हैं, भूकम्प के समय एक सम्भ्रान्त वकील की स्त्री केवल पर्दा के कारण भाग कर घर से बाहर न जा सकी, और दो तीन बच्चों समेत मलवे के नीचे दब गयी ! अनेक दिन बाद बड़ी दारुण दुःखावस्था में जब उसे बच्चों समेत बाहर निकाला गया, तो उसने अपनी करुण कथा सुनायी, तथा प्रण किया कि भविष्य में स्वयं पर्दे का परित्याग करके इस प्रथा के विरुद्ध घोर आन्दोलन करूँगी !

(२) माता की ममता देखिये ! भूकम्प से मकान गिर रहा है। दो तीन बच्चों को लेकर माता बाहर आ गयी ! किन्तु, अरे ! नन्हा तो अभी भीतर पालने में ही पड़ा रह गया ! अब किस में साहस है जो मृत्यु-मुख में प्रवेश करके बच्चे के प्राणों की रक्षा करे ! बहुत रोका गया, पर माता न मानी ! भीतर चली ही गयी, और फिर लौट कर न आ सकी !!

कहुँ सहसा भूगर्भ तें भयो भयानक रोर !
मारक जारक धूम कहुँ प्रकट भयो भुव फोर !! ॥८॥
ह्वै कम्पन कहुँ भूमि पै जहँ तहँ फटे दरार !
प्रगटी बालू - रेत, कहुँ प्रलयंकर जल - धार !! ॥९॥
भूमि सहस्रन मील लौं छिन मैं गयी कँपाय !
दै झटके पटके सबै गिरे भौन भहराय !! ॥१०॥
भूकम्प न कहिये अरे ! नहिं भूचाल कराल !!
भारत गारत करन कहँ आयो दैव दुकाल !!! ॥११॥
जिन जाने बिज्ञान - बल बहुतक बिश्व - बिधान,
तेऊ प्रबल प्रपंच यह रंचहु सके न जान !![1] ॥१२॥
बाल - बृद्ध-नर - नारि की संख्या आह ! अथोर,
आय अचानक छिनक मैं दुर्दिन लयी बटोर !![2] ॥१३॥

---

(१) पश्चिमी वैज्ञानिकों ने आँधी, मेह, भूकम्प आदि प्रकृति की आकस्मिक महान घटनाओं को बतलाने वाले यंत्रों का निर्माण किया है ! शिमला, देहरादून आदि स्थानों में सरकार की ओर से ऐसे यंत्र रक्खे रहते हैं, जो यह बतला देते हैं कि यहां से इतनी दूर अमुक दिशा में इस प्रकार की घटना घटी है ! धन्य विज्ञान ! और धन्य हैं वे वैज्ञानिक जो 'सब सत्य विद्याओं के पुस्तक' पढ़े बिना ही इतना अद्भुत अविष्कार कर सके !

(२) बिहार के भूकम्प से मरने वालों की ठीक संख्या का पता तो अभी तक नहीं लग सका, किन्तु जानकार लोगों का अनुमान है, कि इस भीषण नर-संहार में तीन हजार पुरुष,स्त्री तथा बालक अवश्य मरे होंगे !

पायँ - अछूत अबला किर्ती सकीं बचाय न प्रान !
पर्दा के जनु पाप पै आप भयीं बलिदान !![1] ॥१

मरे, तरे दुख - सिंधु तें सोये मृत्यु - अँकोर !
जियत जरहिं जठरागि की जालिम ज्वालन-जोर !! ॥१

× × × ×

धसे दरारन मैं किते ! केतिक बूड़े वारि !!
मलवा के तल तें किते खनि काढ़े नर-नारि !!! ॥१

उर छुपकाए बाल बहु भूखन भयीं निढार—
छत - विच्छत जननी किर्ती काढ़ीं मलवा - टार !![2] ॥१

× × × ×

---

(१) रूढ़ि राक्षसी ने सब जगह हमारा सत्यानाश किया फिर भी हम ऐसे अंधे हैं कि अभी तक इससे अपना पीछा न सके ! कहते हैं, भूकम्प के समय एक सम्भ्रान्त वकील की स्त्री के पर्दा के कारण भाग कर घर से बाहर न जा सकी, और दो तीन ब समेत मलवे के नीचे दब गयी ! अनेक दिन बाद बड़ी दारुण दुःख वस्था में जब उसे बच्चों समेत बाहर निकाला गया, तो उसने करुण कथा सुनायी, तथा प्रण किया कि भविष्य में स्वयं पर्दे का त्याग करके इस प्रथा के विरुद्ध घोर आन्दोलन करूँगी !

(२) माता की ममता देखिये ! भूकम्प से मकान गिर रहा दो तीन बच्चों को लेकर माता बाहर आ गयी ! किन्तु, अरे ! तो अभी भीतर पालने में ही पड़ा रह गया ! अब किस में साह जो मृत्यु-मुख में प्रवेश करके बच्चे के प्राणों की रक्षा करे ! बहुत गया, पर माता न मानी ! भीतर चली ही गयी, और फिर लौट न आ सकी !!

जिये अन्न बिन द्वैक दिन जल बिन काह बसाय ?
बालू - रेत पटाय सब कूप दिये विनसाय !![1] ॥१८॥

भस्मसात् केतिक भये केतिक गये बिलाय !
केतिक आधे ही रहे घर भूगर्भ समाय !! ॥१९॥

सर्बनाश हू करि भयो नहिं दैवहिं संतोष !
करि कम्पन अब लौं वहै नित्य दिखावत रोष !! ॥२०॥

अब लौं पीड़ित नारि-नर रहत न नेकु निसंक !
सब के मन भूकम्प कौ छायो अति आतंक !! ॥२१॥

बिलबिलाहिं बहु बाल कहुँ जननी कहुँ कलपाहिं !
कहुँ रोटी द्वै टूक - हित जरठ परे रिरिआहिं !! ॥२२॥

महा प्रलय की जो घरी कल्पित करी कवीन,
आह अचानक आजु सो आँखिन देखी दीन !! ॥२३॥

सम्पति लाख - हजार की भौनन गाड़ी गोय !
द्वै रोटी के हेतु ते रहे अभागे रोय !! ॥२४॥

देखि विसमता - बस बढ़े अमित अनीति अकाज,
समदरशी करतार मनु सबहिं कियो सम आज ![1] ॥२५॥

---

(१) अकेले सीतामढ़ी सब डिविजन के अन्तर्गत प्रतिशत ८७ कुएँ बालू रेत से भट कर नष्ट हो गये ! इन में प्रति सैकड़ा केवल २७ कुएँ ऐसे हैं जिन को पुनः सुधार कर पानी देने योग्य बनाया जा सकता है !

—विशाल भारत, फरवरी १९३४

(१) 'अति हित अनहित होत हैं, तुलसी दुर्दिन पाय !' की कहावत यहाँ चरितार्थ होती है ! धनवानों के बड़े बड़े विशालकाय भवन भूकम्प से धराशायी हो गये, निर्धनों के छोटे छोटे घर अथवा

पीड़ित कृषक-समाज की भई दशा दयनीय !
देखत दारुन दीनता दहलै करुना - हीय !! ॥२६॥

घर बिगरे, डाँगर मरे, खेत न खेती जोग !
तापै वारि - विकार तें उपजें नाना रोग !! ॥२७॥

× × × ×

आपु निरंतर भूख के लहि घातक संघात,
मरे - अधमरे ह्वै रहे ! किमि पूछैं पशु-बात ? ॥२८॥

देखि अभागे आपदा भागे विकल बँवाय !
पशु असंख्य भूगर्भ मैं जहँ तहँ रहे समाय !! ॥२९॥

× × × ×

रह्यो मेदिनी मातु को एक अनन्य अधार,
गर्भ - स्राव ताको भयो अथये सब सुख-सार !! ॥३०॥

दै छाता आकाश को बिदरी भूमि बिछाय,
योगी कृषक बिहार के बैठे अलख जगाय !! ॥३१॥

× × × ×

प्रथमहिं काल दुकाल तें बिनसी सब मरयाद !
अब 'साहन के साह' की करत फिरैं फिरियाद !!

साधन आवागमन के भये बिनष्ट बिलीन !
ह्वै साहाय्य - बिहीन हा ! मरत अभागे दीन !! ॥३३॥

बहै वायु सियरी ठरी सीड़ भरी सब भूमि !
नित्य रहै बदरी घिरी बरसहिं बादर भूमि ! ॥३४॥

फूस के छानी-छप्पर या तो गिरे ही नहीं, और यदि कहीं गिरे भी तो किसी को हानि पहुँचाने के कारण न बने !

लखे द्रव्य - दारादि के अपरिग्रह - सम्राट्,
खुलहिं देव - दासीन सों तिन के ज्ञान-कपाट !!' ॥४४॥

× × × ×

व्यभिचारी, लम्पट, ठगी, अपढ़ असाधु, असन्त,
बनि बैठे अब धर्म के ठेकेदार - महन्त !! ॥४५॥

× × × ×

डरहिं सदा श्रम - भार तें पर - अर्जित धन खाय !'
अजा-गल - स्तन-से - सदा मूढ़ जिऐं जग जाय !! ॥४६॥

---

(१) दक्षिण भारत के अनेक प्रसिद्ध मंदिरों में 'देव-दासी' नाम की असंख्य अविवाहिता युवतियाँ रहती हैं, जिन्हें उनके माता-पिता अपने परिवार की कल्याण-कामना के लिये बाल्यावस्था में ही देवता के अर्पण कर जाते हैं ! कहने की आवश्यकता नहीं कि इन आजन्म ब्रह्मचारिणी सुकुमारियों की मौजूदगी में मंदिर का वातावरण व्यभिचार के कीटाणुओं से कितना दूषित रहता होगा ! अशिक्षे ! तेरा सत्यानाश हो ! ऐसी अंधपरम्परा क्या आपने और भी कहीं देखी या सुनी होगी ? क्या ऐसी दशा में भी मिस मेयो द्वारा हमें 'देवताओं के गुलाम' कहा जाना उचित नहीं है ?

(२) पूँजीवाद के प्रताप से देश की गरीब जनता का धन वैसे भी धनवानों की तिजोरियों और बैंकों के तहखानों में जा पड़ा है, किन्तु इस दुरवस्था को देख कर किस सच्चे जनता-प्रेमी का हृदय दुःख से द्रवीभूत न होगा कि इन कथित साधुओं के मठ-मंदिर में अरबों-लाखों की धनसम्पत्ति भरी पड़ी है, जिसका दुरुपयोग 'चंडू-चरस, गाँजा-मदक, अहिफेन, मदिरा, भंग'—तथा भोग-विलास के साधनों में हो रहा है ! सार्वजनिक सम्पत्ति का ऐसा दारुण दुरुपयोग—

बनि महन्त व्यसनन फँसे करत न जग को हेत !
कैसे ऐसे नरहिं नर सनमानत, धन देत ? ॥४७॥

धन की खटका नहिं रहै रहै न ऋन की चोट !
देखि परैं धमधूसरे याही कारण मोट !! ॥४८॥

× × × ×

नारि मरी, सम्पति हरी, करी गूदरी लाल !
भरी भावना भीख की धरी जटा, कठमाल !![1] ॥४९॥

पीवहिं तोला पाँच भरि, जो गाँजा प्रति बार,
कैसे स्वतन सँभारिहैं किमि करिहैं पर-कार ?[2] ॥५०॥

सो भी जनता के पूज्य (?) साधुओं के हाथों क्या और भी किसी देश, समाज अथवा जाति में मिलेगा ?

यह धन आखिर है किस का ? हम खुले शब्दों में कह सकते हैं-जनता का अतः इस का दुरुपयोग इन धूर्तों को करने देना दीन-हीन जनता के कलेजों पर कुल्हाड़ा चलाना है !

पंजाब के वीर और दूरंदेश सिक्खों ने इसी लिये अपने गुरु-द्वारों पर दृढ़तापूर्वक अधिकार करने का आंदोलन किया था। क्या हिन्दुओं में से भी कोई वीरात्मा, जनता के इस धन पर, सार्वजनिक अधिकार की घोषणा करने का साहस करेग ?

(१) नारि मरी, घर सम्पति नासी मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी !
जिन के नख-सिख-जटा बिसाला सो तापस प्रसिद्ध कलिकाला !

—तुलसी।

(२) विगत मनुष्य-गणना के अनुसार देश में अस्सी लाख बेकार 'साधु' हैं ! (इतने, जिनके द्वारा अफगानिस्तान, फ्रांस, इटली, जर्मनी जैसे देश बसाए जा सकते हैं !) इनका दैनिक व्यय, भोजन और वस्त्र के रूप में तो लाखों रुपये होता ही है, (जो सब का सब जनता

लखे द्रव्य - दारादि के अपरिग्रह - सम्राट्,
खुलहिं देव - दासीन सों तिन के ज्ञान-कपाट !!' ॥४४॥

× × × ×

व्यभिचारी, लम्पट, ठगी, अपढ़ असाधु, असन्त,
बनि बैठे अब धर्म के ठेकेदार - महन्त !! ॥४५॥

× × × ×

डरहिं सदा श्रम - भार तें पर - अर्जित धन खाय !'
अजा-गाल - स्तन-से - सदा मूढ़ जिएं जग जाय !! ॥४६॥

---

(१) दक्षिण भारत के अनेक प्रसिद्ध मंदिरों में 'देव-दासी' नाम की असंख्य अविवाहिता युवतियाँ रहती हैं, जिन्हें उनके माता-पिता अपने परिवार की कल्याण-कामना के लिये बाल्यावस्था में ही देवता के अर्पण कर जाते हैं ! कहने की आवश्यकता नहीं कि इन आजन्म ब्रह्मचारिणी सुकुमारियों की मौजूदगी में मंदिर का वातावरण व्यभिचार के कीटाणुओं से कितना दूषित रहता होगा ! अशिक्षे ! तेरा सत्यानाश हो ! ऐसी अंधपरम्परा क्या आपने और भी कहीं देखी या सुनी होगी ? क्या ऐसी दशा में भी मिस मेयो द्वारा हमें 'देवताओं के गुलाम' कहा जाना उचित नहीं है ?

(२) पूँजीवाद के प्रताप से देश की गरीब जनता का धन वैसे भी धनवानों की तिजोरियों और बैंकों के तहखानों में जा पड़ा है, किन्तु इस दुरवस्था को देख कर किस सच्चे जनता-प्रेमी का हृदय दुःख से द्रवीभूत न होगा कि इन कथित साधुओं के मठ-मंदिर में अरबों-लाखों की धनसम्पत्ति भरी पड़ी है, जिसका दुरुपयोग 'चंडू-चरस, गाँजा-मदक, अहिफेन, मदिरा, भंग'—तथा भोग-विलास के साधनों में हो रहा है ! सार्वजनिक सम्पत्ति का ऐसा दारुण दुरुपयोग—

वनि महन्त व्यसनन फँसे करत न जग को हेत !
कैसे ऐसे नरहिं नर सनमानत, धन देत ? ॥४७॥

धन की खटका नहिं रहै रहै न श्रम की चोट !
देखि परैं धमधूसरे याही कारण मोट !! ॥४८॥

× × × ×

नारि मरी, सम्पति हरी, करी गुदरी लाल !
भरी भावना भीख की धरी जटा, कठमाल !!'॥४९॥

पीवहिं तोला पाँच भरि, जो गाँजा प्रति वार,
कैसे स्वतन सँभारिहैं किमि करिहैं पर-कार ?'॥५०॥

सो भी जनता के पूज्य (?) साधुओं के हाथों क्या और भी किसी देश, समाज अथवा जाति में मिलेगा ?

यह धन आखिर है किस का ? हम खुले शब्दों में कह सकते हैं- जनता का अतः इस का दुरुपयोग इन धूर्तों को करने देना दीन-हीन जनता के कलेजों पर कुल्हाड़ा चलाना है !

पंजाब के वीर और दूरंदेश सिक्खों ने इसी लिये अपने गुरु-द्वारों पर दृढ़तापूर्वक अधिकार करने का आंदोलन किया था। क्या हिन्दुओं में से भी कोई वीरात्मा, जनता के इस धन पर, सार्वजनिक अधिकार की घोषणा करने का साहस करेगा ?

(१) नारि मरी, घर सम्पति नासी मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी !
जिन के नख-सिख-जटा बिसाला सो तापस प्रसिद्ध कलिकाला !

—तुलसी।

(२) विगत मनुष्य-गणना के अनुसार देश में अस्सी लाख बेकार 'साधु' हैं ! (इतने, जिनके द्वारा अफगानिस्तान, फ्रांस, इटली, जर्मनी जैसे देश बसाए जा सकते हैं !) इनका दैनिक व्यय, भोजन और वस्त्र के रूप में तो लाखों रुपये होता ही है, (जो सब का सब जनता

घर की गुलामी—

द्रव्य - दारु - दारा - निरत फिरत बिदेसन भूप !
प्रजा - पालिबे की न क्या है यह युक्ति अनूप ? ॥५३॥

× × × ×

(१) सात सागर पार के शासकों द्वारा देश के दीन-हीन मज़दूर-किसान जितने दुखी हैं, उस से कहीं अधिक हमारे काले भाइयों द्वारा उनकी तबाही हो रही है ! विदेशी शासन में रहते हुए तो हमें बोलने लिखने और अपनी करुण कहानी सुनने की फिर भी कुछ स्वतंत्रता रहती है, किन्तु अपनी इस 'घर की गुलामी' द्वारा हमारे हाथ-पाँव और मुख सर्वदा के लिये कस कर बाँध दिये गये हैं ! आये दिन समाचार पत्रों में प्रकाशित हमारे देशी नरेशों के काले कारनामों से आज कौन शिक्षित व्यक्ति परिचित नहीं है ?

यह माना कि ये देशी शासक अपने गौरांग महाप्रभुओं के संकेतों पर काम करने वाली निर्जीव कठपुतलियों से अधिक शक्ति नहीं रखते, फिर भी यदि इनके हृदयों में, भारतीयता, स्वदेशप्रेम, अथवा मनुष्यता ही सही, लेश मात्र को भी होती तो इनके शासन में प्रजा पर इतना उत्पीड़न कदापि न होता ?

इन्हीं बातों को देखकर कहना पड़ता है कि यह राजतत्र प्रणाली ही सम्पूर्ण अनर्थों की जननी है ! अतः जब तक इसकी समूल समाप्ति नहीं हो जाती, तब तक सर्वसाधारण के कष्टों का अन्त असम्भव है ।

वनत पुरोगम नित नये सैर, सिकार, सिंगार !
चिन्ता सुचित स्वराज्य की कब करिहैं दरबार ? ॥५४॥
आतप - तपन तपाय तन उपजावत श्रमकार !
जात पजारयो सो सुधन पेरिस के बाज़ार !! ॥५५॥
भलो भोगिबो बरु मरे रौरव नरक - निवास ![1]
या तनु तें तजिबो न पै पेरिस - पुण्य प्रवास !! ॥५६॥

× × × ×

नहिं पाली काली प्रजा भयो न पातक भूरि !
गोरे स्वानन सेइ कै सुयश लह्यो भरपूरि !! ॥५७॥
सुने सकल संसार तें 'सेवक' बड़े नरेस !
कृशित किसानन सेइ ? नहिं स्वानन सेइ असेस !![2] ॥५८॥
देखि किसानन के दुखहिं करत न कोई कृत्य !
स्वान - सँभारन - हेतु पै राखहिं गोरे भृत्य !! ॥५९॥

× × × ×

---

(१) जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवसि नरक-अधिकारी ॥

—तुलसी ।

(२) उस दिन किसी समाचार पत्र में पढ़ा था कि संसार के सब देशों से अधिक विलायती कुत्तों की खरीद भारतवर्ष ने की है, सो भी भारत के देशी नरेशों ने !

(३) मध्य प्रदेश की एक छोटी-सी रियासत में सरकारी कुत्तों, बतखों, तथा ऐसे-ही कुछ अन्य पशुओं की देखभाल के लिये एक अंग्रेज़ अफसर नियुक्त था ! भारत की और भी अनेक रियासतों में मनचले, शौकीन देशी नरेशों ने आम तौर पर कुत्तों की देख-रेख के

राजनीति कछु जानि जनि माँगहिं मूढ़ 'स्वराज';
यह विचारि जनु राज निज करहिं न शिक्षा-साज !! ॥६०॥

करि न सकहिं च्युत अच्युतहु पाय प्रजा - दुख - भेद !
तातें कियो स्वराज्य जनु 'पत्र - प्रवेश - निषेद' !! ॥६१॥

× × × ×

करहिं विदेसी हू न, सो करि देसी जसु लीन !
नागनाथ कहुँ होत हैं साँपनाथ तें हीन ? ॥६२॥

'अनुदारहु देसी भले परदेसी न उदार'—'
सबल सहारो पाय यह कर बाँधहिं सरकार !! ॥६३॥

× × × ×

लिये गोरे अफ़सर रक्खे हुए हैं ! क्या जाने, इन देशी राजाओं की बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है या क्या इन कामों को क्या थोड़ा वेतन देकर हिन्दुस्तानियों से नहीं कराया जा सकता ? किन्तु यहाँ न तो पैसे की परवाह है, न हिन्दुस्तानियों की हितचिन्तना ! यहाँ तो केवल अपनी शान का ध्यान है, बस !

(१) स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के आठवें समुल्लास में लिखा है,

"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि होता है !"

वैयक्तिक उन्नति से संतुष्ट न रह कर 'सब की उन्नति में अपनी उन्नति' का आदेश देने वाले स्वामी दयानन्द के समय में, पश्चिम से अराजकतावाद की लहर शायद न आ पायी थी, अन्यथा वे स्वदेशी-परदेशी के झगड़े में न पड़ कर राजतंत्रवाद का ही सर्वथा बहिष्कार करना उचित समझते ।

भयी 'घोड़ावन' की, कबहुँ 'हथियावन' की माँग !
मोटर आवन हेतु अब 'मोटरावन' कर लाग !![1]॥६४॥

सुनहुँ स्वदेशी राज्य को अनुपम न्याय उदार—
'ठाकुर - घर जनमै सुता प्रतिपालहिं कृषिकार' !! ॥६५॥

सुन्यों न देख्यों और कहुँ ऐसो न्याय - विधान—
'ठाकुर के मेहमान कौ भोजन भरहिं किसान' !! ॥६६॥

न्यून कबहुँ कर मैं करहिं यद्यपि धेला हू न,
लेत कृपक सों मुफ्त पै दूध - दही-घृत - ऊन !! ॥६७॥

प्रजा - पाप - परिताप कौ साझी समुझि, स्वराज,
बेटी - विक्रय मूल्य महँ लेत कमीशन आज !! ॥६८॥

पाप - पजारन हेतु बहु तीरथ किये हजूर,
व्यय उगाहि कृत पुण्य के भागी कृषक - मजूर !! ॥६९॥

'बाई जी को (कृषक सों) हथ लेवा' कहुँ लेत !
कतहुँ अभागे मरत हैं 'कुँवर-कलेवा' देत !! ॥७०॥

शादी बरबादी भयी करिये कहाँ पुकार ?
दैय्या ! आधे ब्याँत को घृत लीन्हों सरकार !! ॥७१॥

---

(१) देशी राज्यों की सर्वसाधारण जनता की अरक्षितावस्था का विचार कीजिये ! कहीं कोई समर्थ शक्तिवान व्यक्ति है जो इस रक्त-शोषण और उत्पीड़न से उस की रक्षा कर सके ? कोई नहीं ! न धर्म उसका सहायक है, न ईश्वर उसका संरक्षक ! सब धनियों और शक्तिशालियों के साथी हैं ! जनता मजबूर है अपने आकाओं के इशारों पर नाचने और अत्याचार सहने के लिये ! उसके पास एक—केवल एक—अस्त्र है, साम्यवाद का प्रचार करके इस दुखदाई राज-सत्तावाद का अंत करना, बस !

ब्यायी दोसर भैंस, बहु लायी सम्पति साथ,
पाँच रुपैया कर दिये दैय्या ! कम्पत हाथ !![1] ॥७२॥

× × × ×

देखिय देशी राज्य सम कहँ कौतिक - आगार ?
क्रय-विक्रय पशु-भाँति जहँ होत सुने श्रमकार !![2] ॥७३॥

द्वै दिन बीते अन्न बिनु ता पै चढ़्यो बुखार !
तऊ न मान्यों निर्दयी लायो बाँधि बेगार !![3] ॥७४॥

× × × ×

---

(१) यह आठ दोहे, संख्या ६५ से ७२ तक, ६ मई सन् १९३४ के साप्ताहिक हिन्दी 'प्रताप' (कानपुर) में प्रकाशित देशी राज्यों के विषय के एक लेख के आधार पर लिखे गये हैं। इनमें वर्णित नाना प्रकार के करों और लगानों द्वारा आप को विदित होगा कि देशी राज्यों की असहाय प्रजा का दोहन किस निर्दयता के साथ किया जाता है ! प्रत्येक दोहे में एक-एक नये-निराले लगान का संक्षिप्त संकेत किया गया है ! 'बाई जी का नाम सुनकर दुख भरी हँसी आये बिना नहीं रह सकती ! कहने की आवश्यकता नहीं कि यही बातें हैं जो हमें 'राज तंत्रवाद' के विरुद्ध विचार करने के लिये बाध्य करती हैं !

(२) मध्य भारत की एक प्रसिद्ध रियासत में, कथित 'छोटी जाति' के श्रमजीवी अभी तक पशुओं की भाँति ७५—८० अथवा १००—१२५ रुपये में बेंचे खरीदे जाते रहे हैं ! क्रीत दासत्व की जो घिनौनी प्रथा सैकड़ों वर्ष पूर्व सभ्य देशों से उठ चुकी है, उसका अभी तक इन देशी राज्यों में प्रचलित रहना क्या सभ्यताभिमानी भारत के लिये घोर कलंक की बात नहीं है ?

(३) बेगार की कुप्रथा का भयानक रूप जितना देशी राज्यों में देखने को मिलता है उतना अंग्रेजी भारत में शायद ही कहीं मिले !

कौन कहै कारे लहैं जसु गोरे तें न्यून ?
जहँ केवल महराज कौ 'हुकुम' होत कानून !! ॥७५॥

दुष्ट दुराग्रह वरु तजै सज्जन सुखद सुवान,
निपट निरंकुशता न पै राजतंत्र दुख - खान !! ॥७६॥

× × × ×

अनेकों राज्यों में तो वाक़ायदा वेगार का मोहकमा होता है, जहाँ प्रत्येक तहसीलदार को अपने इलाके के किसानों में से कुछ, नित्य वारी पर वेगार के लिये भेजने पड़ते हैं ! अनेक किसान जो ५०—६० मील से अपना मुकदमा निपटाने राजधानी की अदालतों में आते हैं, अकसर हाँका (शिकार) अथवा अन्य कामों में पकड़ लिये जाते हैं, और अनेक वार किसी वाघ-भालू से घायल होने पर मुकदमे के स्थान में उन्हीं वेचारों का निपटारा हो जाता है !!

महाजन (?)

ह्वै निर्वाचित जात हौ कल कौंसिल - दरबार,
भूलि न जइयौ सभ्यवर ! ब्यौहर कौ ब्यौहार !![1] ॥७७॥
अंध अशिक्षा तें रहे तोरी रीढ़ लगान !
ब्यौहर के ब्यौहार तें भिक्षुक भये किसान !![2] ॥७८॥

× × × ×

---

(१) निम्नलिखित दोहे को दृष्टि में रख कर,

जाहु भलैं कुरुराज पै धारि दूत वर बेश,
जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ केशव द्रौपदि - केश !!

—वियोगी हरि।

(२) कहाँ तक लिखें ? यह निर्बला लेखनी लिखते-लिखते हैरान हो गयी, परन्तु किसानों के कष्टों का अन्त न आया ! अभी महाजन महोदय की काली करतूतों का ख़ाका खींचना बाकी ही पड़ा है ! क्या आपने इनकी हृदय-हीनता का भी कभी अनुभव किया है ?

रबी अथवा ख़रीफ़ की फ़सिल कटकर जिस समय खलिहान में पहुँचती है, तभी से इनकी गृद्ध दृष्टि उस पर लग जाती है ! अनेक बार देखा गया है कि उपज का दाना-दाना उठ कर ब्यौहर के यहाँ चला गया, बेचारा किसान और उसके बाल बच्चे ताकते ही रह गये ! और यह सब उस बाक़ी में जाता है जो द्रौपदी के चीर—नहीं नहीं, शैतान की आँत—के समान सदा बढ़ती ही रहती है, घटना कभी जानती ही नहीं ! मूल, ब्याज, और चक्र वृद्धि ब्याज, सब वसूल हो सके ! किन्तु यह बाक़ी अनन्त काल तक कभी बेबाक़ न होगी !

विधना ! केहि अपराध तें परेहुँ महाजन - हाथ !
काटि कपटि केतिक भरौं ब्याज न छोड़ै साथ !! ॥७६॥

सत्रह लै सत्तर दिये किये न ऋन तें पार !
बरु सर्वस लै सेठ जी ! अब कीजै उद्धार !! ॥८०॥

ब्याज - वहीखाता - कथा किमि जानै हम हाय !
कब की बाकी काढ़ि धौं भैंस लयी मुकताय !! ॥८१॥

× × × ×

खैंचि रह्यो अंत न लह्यो कृषक - दुशासन बीर !
बाढ़त जाली ब्याज, ज्यों पाञ्चाली कौ चीर !![1] ॥८२॥

उत पूँजीपति निर्दयी इत ब्यौहर बदकार,
चूँसत हीन-अधीन लखि दीन कृषक-श्रमकार !![2] ॥८३॥

---

(१) निम्न लिखित दोहे को खींच तान कर,
खैंचि रह्यो अन्त न लह्यो अवधि - दुशासन बीर !
आली ! बाढ़त बिरह ज्यों पांचाली कौ चीर !!
—बिहारी ।

(१) इन पंक्तियों के लेखक का यह व्यक्तिगत अनुभव है, कि इस समय भारत के ९६ प्रति सैकड़ा किसान कर्ज़दार हैं ! अब प्रश्न यह है कि इस कर्ज से किसानों को किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है ? किसानों की वर्तमान आर्थिक दुरवस्था को देखते हुए तो अनन्त-काल तक यह सम्भव नहीं है कि वे इस कर्ज से अपने बल-बूते पर छुटकारा पा सकेंगे ! उधर महाजन महोदय भी अपना मूल, ब्याज, ब्याज पर ब्याज और उस पर फिर ब्याज (!) आदि न जाने कितना दोहन कर चुके हैं ! अतः उनकी भूख भी मिट जानी चाहिये !

(२) सुना है, किसानों के कर्जे की मंसूखी के लिये पंजाब कौंसिल में एक बिल पेश है ! यदि सचमुच वह किसानों की भलाई को सम्मुख

रख कर पेश किया गया हो, और फिर वहाँ वह पास भी हो जाय, और वैसे ही बिल अन्य सूबों की सरकारें भी अपनी अपनी कौंसिलों में पास करें, सच्चे दिल से किसानों की भलाई को दृष्टि में रख कर—तो किसानों का, साथ ही सब का, कल्याण सम्भव है। अन्यथा, 'नष्टे मूले नैव शाखा न पत्रम्' के अनुसार देश का सर्वनाश समीप है!

गोधन----

केहि के पुण्य प्रताप तें बढ़्यो अतुल उत्कर्ष?
चढ़्यो समुन्नति-सीस पै केहि - बल भारतवर्ष ? ॥८४॥
कृषि-प्रधान केहि बल अजहुँ हिन्दुस्तान कहाय ?
केहि बल अजहुँ किसान को कछु अस्तित्व जनाय ?[1] ॥८५॥
चरि नित गोचर-भूमि तें भरि वहु सुपय पयोद,
पगुरातीं आतीं अहा ! सुरभी भौन समोद ! ॥८६॥

× × × ×

जिन थन देखे वे सुपय गयीं सुधेनु कटाय ![2]
अब हैं छीन—छयादि के रोगन मारीं—गाय !! ॥८७॥

---

(१) "प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २८,९६० मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं। उसके छः बछियाँ छः बछड़े होते हैं, उन में से दो मर जायँ तो भी दस रहे, इन में से पाँच बछियों के जन्म भर के दूध को मिला कर १२४,८२० मनुष्य तृप्त हो सकते हैं ! अब रहे पाँच बैल, वे जन्म भर में ५०००० मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं ! उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिलाकर ३,७४,८००० मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिलाकर एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५,६०० मनुष्य एक बार पालित होते हैं।"

—स्वामी दयानन्द सरस्वती।

(२) 'गत २५ फरवरी १९२१ को राज्य परिषद में माननीय सेठ

वे सुरभी सुखदायिनी कामधेनु धन - खान !
आह ! घटे जिनके कटे जन, जीवन, तन, प्रान !!' ॥८८॥

गोविन्द दास के यह कहने पर फौज में गो मांस की जगह बकरे का मांस खर्च किया जाय—जंगी लाट ने कहा था,—यदि गोरी सेना में गोमांस के स्थान पर बकरे का मांस दिया जायगा, तो प्रतिदिन खर्च ४॥ लाख रुपया बढ़ जायगा !

'सन् १९२७ में लाला सुख वीरसिंह के प्रश्न के उत्तर में जंगी-लाट ने कहा था कि भारत में अफ़सरों को मिला कर कुल ६०९४० ब्रिटिश सैनिक हैं ! और १९२६—२७ का तखमीना था कि साल में ८५३८ टन मांस (हड्डियों समेत) लगेगा। जिस को यदि एक करोड़ सेर समझ लिया जाय, तो भी गोमांस के स्थान में बकरे का मांस देने पर साल में केवल २५ लाख रुपया अधिक लगेगा'

—'देश की बात'

कुछ ठिकाना है ! कहां प्रतिदिन खर्च ४॥ लाख रुपया बढ़ता था, और कहाँ अब साल में केवल २५ लाख रुपया अधिक निकला ! वाह रे जंगीलाट महोदय ! आप का ख़याल था कि कौन हिसाब करने बैठेगा, इसी से जो मन में आया कह दिया !

इस प्रकार की ये पर की उड़ा कर दीन-हीन मज़दूर किसानों के एक मात्र आधार गोवंश का निर्मम संहार किया जा रहा है ! स्वामी जी के कथनानुसार जिस गाय के द्वारा एक बार में लाखों जीवों का पेट भरता है, उसे ही भारत की रक्षा (अथवा हत्या ?) के लिये नियुक्त गोरे सैनिक अकारण ही भक्षण कर रहे हैं !

(१) अंग्रेजों की आयु का परिमाण प्रति जन ५१·५ वर्ष है, अमेरिका ५०·५ वर्ष, फ्रांस ४८·५ वर्ष, जर्मनी ४७·४ वर्ष, इटली ४७ वर्ष, जापान ४४·१ वर्ष, (अब हमारे भारतीयों की औसत आयु

ह्वै गोवंस : विनास जिमि भयी दशा विकराल,
लिखि पैहै किमि लेखनी ! ते दुख - द्वंद कराल !! ॥८९॥

× × × ×

कोटि कोटि चौपेन कौ ह्वै प्रति साल सँहार !
चौदह बरसन - हेतु हा ! बचे कोटि दस-चार !![१] ॥९०॥

समुझि न आवै हिन्दुओ ! तुम्हरे हाथन हाय !
कैसे भारत - भूमि पै कटतीं कोटिन गाय !![२] ॥९१॥

× × × ×

सुनिये—) डिगवी महाशय ने दिखलाया है कि भारतीयों की औसत आयु २३ वर्ष से अधिक नहीं है !! अस्तु, आइये एक बार और जोर जोर से पढ़ लें—"जीवेम शरद: शतम्" !!!

(१) आस्ट्रेलिया की लोक संख्या केवल ४० लाख है, पर वहाँ पालतू पशुओं की संख्या ११ करोड़ ३५ लाख ५० हजार से भी अधिक है। इस हिसाब से भारत जैसे कृषि प्रधान और अहिंसा वादी गो-भक्त देश में, पशुओं की संख्या २६,२८० करोड़ होनी चाहिये थी। किन्तु समूचे भारत में पालतू पशुओं की संख्या केवल १४ करोड़ ६६ लाख १२ हजार है ! जिस में गाय-बैल की संख्या तो केवल ७ करोड़ ६८ लाख ३ हजार ही है !

—देश की बात।

(२) हैं ! आप चकराते क्यों हैं ? हिन्दुओं के हाथों गोहत्या !! राम राम !! किन्तु गोहत्या का अर्थ केवल स्वयं अपने ही हाथों हत्या करना नहीं है, वरन् (मनु महाराज के कथनानुसार) लाने, ले जाने, बेचने, दलाली करने आदि से भी उतने ही पाप का भागी बनना पड़ता है जितना स्वयं मारने से। अब आप अगले पद्यों को

निवेदन है, कि आप प्रतिनिधि-परिषद् में देश के इस भीषण गो-संहार के विरुद्ध आर्थिक आधार पर अपनी आवाज़ बुलन्द करें ! आज़ाद अन्सारी और महमूद-शेरवानी आदि माननीय नेतागण वहाँ गो-रक्षा के प्रश्न को लेकर इतना व्यापक आन्दोलन करें, कि ज़ंगीलाट महोदय को अपनी लँगड़ी दलीलें वापस लेकर गोमांस के स्थान में बकरे का मांस खर्च करने के लिये बाध्य होना पड़े। तभी उन का कौंसिल में जाना सार्थक है। अन्यथा 'फ्री-सदियों' के फेर में पड़ कर बन्दर बाँट कराना तो सभी को आता है !

२—(ब) पूज्य 'बापूजी' तथा उनके असंख्य अनुयायी आज ग्राम सुधार की सद्भावना लेकर ग्रामों की ओर गये, तथा जा रहे हैं ! उनके चरणों में (अकिञ्चन) लेखक की यह प्रार्थना है, कि आप कृपया अपने 'ठोस' कामों की सूची में गोधन-रक्षा के प्रश्न को सब से ऊपर रक्खें। निश्चय ही आप लोगों ने गोरक्षा के महत्वपूर्ण प्रश्न को लेखक से अधिक समझा होगा, किन्तु धृष्टता क्षमा करेंगे, अभी तक की आपकी योजनाओं में व्यापक रूप से इस प्रश्न पर प्रकाश पड़ता नहीं दिखाई दिया है !

२—(स) अनेक महापुरुषों ने गोरक्षा तथा गोधन-सुधार सम्बन्धी शाखाएँ खोल रक्खी हैं, उनके सञ्चालकों से हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि आप कृपया अपने नियमों और उद्देश्यों में से 'धर्म' शब्द को निकाल कर उसके स्थान में 'अर्थ' रख कर दीजिये—गोरक्षा के प्रश्न को धर्म की चहारदीवारी से निकाल कर आर्थिक आधार पर सञ्चालित कीजिये।

इस प्रकार यदि उपरोक्त तीनों प्रकार के 'सुधारवादी' गोरक्षा के प्रश्न को हल करने का दृढ़ संकल्प कर लें, तो उन के द्वारा देश का महान कल्याण हो सकता है।

याद रहे, गोहत्या के बंद होने और घी-दूध के सस्ता तथा सुलभ होते ही आधा स्वराज्य तो हमें उसी समय मिल जायगा। क्या आज की दुर्दशा किसी से छिपी है, जब न कहीं शुद्ध दूध मिल सकता है न पवित्र घी ? सर्वत्र चर्बी, तेल और गन्दी चीजों के सम्मिश्रण बिक रहे हैं !

पशु पीड़ा !!

निपट निरीह पशून की सुनत न मूक पुकार !
मनुज-रूप तेहि जानिये घोर दनुज-अवतार !![1] ॥६६॥
हरी जवानी नाधि हर दियो न भूसा-घास !
देखि बुढ़ापा निर्दयी सौंप्यो हाथ गवास !![2] ॥६७॥

× × × ×

---

(१) "भारत धर्म प्रधान देश है। धर्म ही इसका तन, मन, धन—सर्वस्व—है। 'अहिंसा परमोधर्मः' इसका सर्व कालीन सिद्धान्त है।" इन बातों को सुनते-सुनते कान बहिरे पड़ गये, किन्तु धर्म तथा अहिंसा के इन सिद्धान्तों को वास्तविकता की कसौटी पर कसते ही वे सर्वथा अधूरे उतरे ! 'दया धर्म का मूल' कहते हुए भी हम मूक पशुओं के साथ निर्दयता दिखलाते हुए नहीं लजाते ! हमारे हाथी बैल, घोड़े, भैंसे, गधे आदि श्रमकारी पशुओं को कितनी मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाते हैं, फिर भी उदारता का दम्भ करने वाले हम धर्माभिमानियों के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती ! अपनी कष्ट कहानी सुना-सुनाकर जिस प्रकार हम शासकों से स्वराज्य माँगते हैं—उसे अपना 'जन्म-सिद्ध अधिकार' घोषित करते हैं—उसी प्रकार इन मूक पशुओं से निर्दयता पूर्ण गुलामी कराते समय हम उनके जन्म-सिद्ध अधिकारों का तनिक भी ध्यान क्यों नहीं रखते ? क्या यह हमारी अक्षम्य स्वार्थ-परता नहीं है ?

(२) क्या करें और क्या न करें ! इतनी भीषण दुरवस्था है, जिसका कोई इलाज ही नहीं दीखता ! एक ओर ये दीन-हीन पशु

मिलत न भूसा भरि उदर बिन पानी दिन जात !
सानी-चोकर की भयी अकथ कहानी तात !! ॥९८॥

पूँछ कटी, ग्रीवा फटी ! लटी - लटपटी देह !!
जीभ कढ़ी, खैंचैं लढ़ो, आँधी-आतप-मेह !!![१] ॥९९॥

× × × ×

नित के गोवर-मूत तें करी पोखरी सार !
परी महावट की झरी भींजि भयो भिनसार !![२] ॥१००॥

हैं, जिनका न और कोई रक्षक है न सहारा ! आखिर इस विषमता का सर्व सम्भव निदान हो भी सकता है या नहीं ? अवश्य हो सकता है, और वह है इन किसानों की वर्तमान दुर्दशा दूर करना, इनकी अवस्था में आमूल परिवर्तन करना, बस ! जब तक यह न होगा, तब तक पशु-पक्षी कीट-पतंग सब को कष्ट होता ही रहेगा !

(१) मशीनों-मोटरबसों और इंजनों आदि का क्रियात्मक विरोध करने वाले भाई ध्यान पूर्वक देखें, उनकी प्राचीनता-प्रियता से बेचारे पशुओं को कितना दारुण क्लेश सहना पड़ता है ! यदि कहा जाय, कि सर्वथा मशीनों का ही व्यवहार करने से ये पशु बेकार हो जायेंगे—इन्हें जंगलों में छोड़ देना पड़ेगा—नहीं, अनेक हलके और कम थकाऊ काम उन से लिये जा सकते हैं। कम से कम वैसी नौबत तो कदापि न आनी चाहिये, जिस का चित्रण दोहे में किया गया है !

(२) सच बात तो यह है कि मनुष्य-समाज में इतनी क्रूरता तथा स्वार्थपरता प्रवेश कर गयी है कि वह अपना साधारण-सा भी कर्तव्य पालन करना नहीं चाहता ! हम चाहें तो अत्यन्त निर्धन होते हुए भी इन मूक पशुओं को वर्षा, शीत और घाम की कठिनाइयों से बचा सकते हैं, परन्तु जब हम उन्हें अपना मित्र, हितैषी अथवा पारिवारिक

सदस्य समझें तब न ! हमने तो उन्हें आजीवन कैदी समझ कर, जैसे भी हो सके उन से, प्रत्येक प्रकार से अधिक से अधिक गुलामी कराने का स्वभाव बना रक्खा है ! इन पंक्तियों को पढ़ने वाले पाठक,सम्भवतः झट से कह बैठेंगे, कि मैं कोई जरूरी बात न लिख कर पशुओं का स्वराज्य क्यों माँगने बैठा हूं ? किन्तु मनुष्यता की सार्थकता का यह तकाजा है कि हम अपने आश्रित जीवों—बैलों, कुत्तों, घोड़ों, गधों, आदि—के साथ भी वैसा ही सलूक करें, जैसा हम अपने साथ औरों के द्वारा कराना चाहते हैं।

कहते हैं, यूरोप का कोई भारी दार्शनिक विद्वान मरते समय यह वसीयत कर गया था कि उसका शरीर मरने के बाद न गाड़ा जाय न जलाया, वरन मैदान में डाल दिया जाय, जिससे उन पशु-पक्षियों का भी भला हो जाय जिनकी ओर,अपने स्वार्थ-साधन में निरत रह कर, हम कभी ध्यान ही नहीं देते ! धन्य है उन महात्माओं को, जो पशु-पक्षियों की सेवा की इतनी कामना रखते हैं !

वाचक वृन्द ! इस हतभागिन लेखनी ने आपको रुला-रुलाकर यहाँ तक पहुंचाया ! अवश्य ही आप इस करुणा-कलाप से उकता गये होंगे। अस्तु, आइये अब जरा दम लेकर आगामी पृष्ठों पर दृष्टि पात करें, क्यों कि, सम्भव है अगली मंजिल और भी अधिक करुणा-जनक सिद्ध हो !!

पिछले छः शतकों में विशेष कर आर्थिक प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है। प्रसंगानुसार यद्यपि कहीं-कहीं सामाजिक और धार्मिक विषयों की भी चर्चा की गयी है, किन्तु 'धर्म' का—उस धर्म का जिसे सीधे-सादे शब्दों में दुराग्रह, रूढ़ि-पालन अथवा मजहब परस्ती कह सकते हैं—खोखलापन भली-भाँति दिखलाने के लिये कुछ अधिक कहने की आवश्यकता है। अस्तु।

इस (सातवें) शतक में, प्रथम ४६ दोहों में, इस्लाम के अनुयायी मुसलमान भाइयों से यह कहने की चेष्टा की गयी है, कि हजरत मुहम्मद साहब ने अरब के सुविस्तृत मरुस्थल में जिन सामाजिक स्वर्ण नियमों की रचना की थी, वे संसार के सभी भागों में सभी समय समान रूप से लागू नहीं हो सकते। यदि ऐसा होता तो भारत में मुगल राज्य की नींव दृढ़ करने वाले महान नीतिज्ञ अकबर को 'आइन अकबरी' की, तथा वर्तमान टर्की के निर्मायक मुस्तफा कमाल पाशा

को नव-संशोधन की आवश्यकता न पड़ती। औरंगजेबी मनोवृत्ति के मनुष्यों ने इस तथ्य को न समझ कर, इस्लाम को मजहब के गर्त में गिरा कर, हजरत मुहम्मद द्वारा प्रवर्तित सामाजिक नियमों को सार्वभौमिकता प्रदान करने के स्थान में संकुचित किया और कर रहे हैं! साथ ही भारत के कल्पतरु सरीखे महान राष्ट्र को गँवा देने के गुरुतर अपराध के भागी भी वे ही बने और बन रहे हैं!

शेष ५४ दोहों में हिन्दुओं से यह कहा गया है, कि वे कूपमंडूकत्व की ओछी भावना छोड़ कर दुनिया को देखें, और जिस युग में उन्हें तथा उनकी भावी संतान को रहना है उसकी—केवल उसी की—विचार-धारा में बहना सीखें। पुरानी पोथियों के सड़े-गले पन्नों में लिपटे रह कर वे आधुनिकता—अप-टु-डेट पन—से जितना ही दूर भागेंगे, 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' मान कर, 'श्रुति स्मृति-पुराणोक्त' धर्म के गहरे गढ़ों में वे जितने ही गिरेंगे, उतना ही उन का सत्यानाश होगा! उन के 'देश-कालाबाधित धर्म' और ईश्वर-प्रणीत धर्म-ग्रन्थों की—जिन्हें वे 'सब सत्य विद्याओं की पुस्तक' मानते हैं, निस्सारता अब सब पर प्रकट हो चुकी है। अब और अधिक काल तक इन के द्वारा, नूतन (वैज्ञानिक) उन्नति तथा स्वतन्त्र विचार-धारा का विरोध करना अपना अहित आप करना है। अन्य देशीय मानसिक प्रगति मूलक विचारों का विरोध अब हमारी उन्नति में विशेष बाधक है, अतः इसे हटाने में ही कल्याण है। अन्यथा, दासता की दुर्दान्त कड़ियाँ प्रतिदिन और भी दृढ़ होती जा रही हैं, और वह समय अब अधिक दूर नहीं है, जब कि हमारे बंधन इतने दृढ़ हो गये होंगे कि फिर संसार की कोई भी शक्ति हमें छुड़ा सकने में समर्थ न हो सकेगी!

सातवाँ शतक

मरुस्थल का देव-दूत[1]

फँसे पंक पाखंड में विविधि कबीलन फूट !
घिरी घटा जड़वाद की मची परस्पर लूट !! ॥१॥

उत्तरदायी देश को कतहुँ न दीखै कोय,
बिखरी बद्दू जाति में करै संगठन जोय !! ॥२॥

माटी - पत्थर के पुजैं अपने अपने देव !
साँचे ईश्वर वाद को लखै न कोई भेव !! ॥३॥

× × × ×

पारस्परिक अमेल तें सदा समर जहँ होत,
महा मरुस्थल में वहीं उपजो उज्वल जोत ! ॥४॥

× × × ×

---

(१) महर्षि मोहम्मद के अवतीर्ण होने से पूर्व अरब तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों की क्या अवस्था थी, इसका संक्षिप्त वर्णन उपरोक्त दोहों में किया गया है। ऐसी भीषण परिस्थिति में उत्पन्न होकर भी, इतनी जाहिल जातियों को, सभ्य, शिक्षित तथा संगठित करना हज़रत मोहम्मद जैसी प्रतिभाशाली हस्तियों का ही काम था ! तभी तो लेखक ने उन्हें परम श्रद्धा के साथ 'मरुस्थल का देव-दूत' कह कर सम्बोधित किया है !

प्रबल विजेता, शक्ति-घन ईश्वर - भक्त अनन्य !
तपोनिष्ठ, कर्मठ, सुधी महा मोहम्मद ! धन्य !! ॥५॥

लै 'एकेश्वर वाद" कौ वर दायक जयकार,
खर्व कबीनल में कियो प्रबल शक्ति - संचार ! ॥६॥

एकेश्वरवाद—'ला इलाह इल्लिलाह' (एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति) कहने की आवश्यकता नहीं कि महर्षि मोहम्मद ने एक ईश्वरवाद विषयक जिस महान सिद्धान्त को लेकर अरब की जाहिल जातियों में सच्चा और स्थायी भ्रातृ-भाव उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्राप्त की थी, और जिसके आधार पर आरम्भ से लेकर आज तक इस्लाम एक जीता-जागता समाज सिद्ध हुआ, उस 'लाइलाह इल्लिलाह' तथा, श्रीमच्छङ्कराचार्य के 'एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति' में, जिसके द्वारा कोटि-कोटि बौद्ध धर्मावलम्बियों को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित किया गया था, कोई अन्तर नहीं है। किन्तु दोनों के कार्यों का परिणाम सर्वथा भिन्न है, एक के अनुयायी आज ४०—४५ करोड़ की संख्या में अफ़ग़ानिस्तान, ईरान तथा टर्की आदि विभिन्न देशों में आज़ादी का आनन्द ले रहे हैं, और दूसरे के अनुयायी आज ७०० वर्षों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का गौरव जाप कर रहे हैं !!

इन पंक्तियों को पढ़ने वाले पाठक भूल से भी यह न समझ बैठें कि लेखक को इस्लाम के संस्थापक हजरत मोहम्मद से पक्षपाती प्रेम है, अथवा सनातन ब्राह्मण धर्म के पुनरुद्धारक श्री शंकराचार्य से अश्रद्धा है, लेखक की दृष्टि में दोनों हस्तियाँ महान श्रद्धा की पात्र हैं। किन्तु सत्य को छिपाने का साहस मुझ में नहीं है। अतः दोनों की तुलना करके, परिणाम पाठकों पर छोड़ कर, यह लेखनी आगे बढ़ने की चेष्टा करती है।

इस्लाम----(१) उन्नति के उच्च शिखर पर !

धनि बाबर से वीर बर धन्य हुमायूँ धीर !
सींच्यो सुतरु स्वराज्य को दै दै शोनित - नीर ! ॥७॥
नीति-निपुन, शासन-सुपटु साधक युक्ति अकाट,
मुगल-राज-वर मौलि-मनि धनि अकबर सम्राट ![1] ॥८॥

× × × ×

भरी जहाँगीरी जहाँ नूरजहाँ - नय पाय,
करी कृपा की याचना चर गौरांग पठाय ![2] ॥९॥

---

(१) दोहे में वर्णित विशेषणों के अतिरिक्त अकबर के शासन में सब से बड़ी उत्तमता थी उसकी प्रजा की खुशहाली। किसानों की दशा इतनी सुख-सम्पन्न थी, कि उस समय एक रुपये में १२५ सेर गेहूँ, २०२ सेर जौ, ८० सेर चावल, २१ सेर घी और ६४ सेर तेल का भाव था ! अर्थात आज से करीब १५ गुना !

अकबर ही नहीं, उसके उत्तराधिकारी मुगल शासकों के समय में भी साधारण जनता आज से अत्यधिक सुखी-सम्पन्न थी। अकाल तो उन दिनों कभी पड़ते ही न थे। कारण क्या था ? यही कि उन शासकों का घर यहीं—भारतवर्ष में ही—था। वे येन केन प्रकारेण देश का धनधान्य खींच कर किसी अन्य देश को ले जाने की आकांक्षा न रखते थे।

(२) जहांगीर के दरबार में हाकिन्स और सर टामस रो नामक अँग्रेज राजदूत आये थे, जिन्होंने बादशाह से सूरत में व्यापार करने का फरमान प्राप्त कर लिया था !

प्रबल विजेता, शक्ति-घन ईश्वर - भक्त अनन्य !
तपौनिष्ठ, कर्मठ, सुधी महा मोहम्मद ! धन्य !! ॥५॥
लै 'एकेश्वर वाद'' कौ वर दायक जयकार,
खर्व कबीनल मैं कियो प्रबल शक्ति - संचार ! ॥६॥

एकेश्वरवाद—'ला इलाह इल्लिलाह' (एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति) कहने की आवश्यकता नहीं कि महर्षि मोहम्मद ने एक ईश्वरवाद विषयक जिस महान सिद्धान्त को लेकर अरब की जाहिल जातियों में सच्चा और स्थायी भ्रातृ-भाव उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्राप्त की थी, और जिसके आधार पर आरम्भ से लेकर आज तक इस्लाम एक जीता-जागता समाज सिद्ध हुआ, उस 'लाइलाह इल्लिलाह' तथा, श्रीमच्छङ्कराचार्य के 'एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति' में, जिसके द्वारा कोटि-कोटि बौद्ध धर्मावलम्बियों को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित किया गया था, कोई अन्तर नहीं है। किन्तु दोनों के कार्यों का परिणाम सर्वथा भिन्न है एक के अनुयायी आज ४०—४९ करोड़ की संख्या में अफ़ग़ानिस्तान, ईरान तथा तुर्की आदि विभिन्न देशों में आज़ादी का आनन्द ले रहे हैं, और दूसरे के अनुयायी आज ७०० वर्षों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का नीरस जाप कर रहे हैं !!

इन पंक्तियों को पढ़ने वाले पाठक भूल से भी यह न समझ बैठें कि लेखक को इस्लाम के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद से पक्षपाती प्रेम है, अथवा वर्तमान ब्राह्मण धर्म के पुनरोद्धारक श्री शंकराचार्य से अश्रद्धा न, लेखक की दृष्टि में दोनों हस्तियाँ महान श्रद्धा की पात्र हैं। किन्तु तथ्य को छिपाने का शक्ति उस में नहीं है। अतः दोनों की तुलना करके, परिणाम पाठकों पर छोड़ कर, यह लेखनी आगे चलने की चेष्टा करती है।

इस्लाम----(१) उन्नति के उच्च शिखर पर !

धनि बाबर से वीर वर धन्य हुमायूँ धीर !
सींच्यो सुतरु स्वराज्य को दै दै शोनित - नीर ! ॥७॥
नीति-निपुन, शासन-सुपटु साधक युक्ति अकाट,
मुगल-राज-वर मौलि-मनि धनि अकबर सम्राट ![1] ॥८॥

× × × ×

भरी जहाँगीरी जहाँ नूरजहाँ - नय पाय,
करी कृपा की याचना चर गौरांग पठाय ![2] ॥९॥

---

(१) दोहे में वर्णित विशेषणों के अतिरिक्त अकबर के शासन में सब से बड़ी उत्तमता थी उसकी प्रजा की खुशहाली। किसानों की दशा इतनी सुख-सम्पन्न थी, कि उस समय एक रुपये में १३९ सेर गेहूँ, २०२ सेर जौ, ८० सेर चावल, २१ सेर घी और ६४ सेर तेल का भाव था ! अर्थात आज से करीब १९ गुना !

अकबर ही नहीं, उसके उत्तराधिकारी मुगल शासकों के समय में भी साधारण जनता आज से अत्यधिक सुखी-सम्पन्न थी। अकाल तो उन दिनों कभी पड़ते ही न थे। कारण क्या था? यही कि उन शासकों का घर यहीं—भारतवर्ष में ही—था। वे येन केन प्रकारेण देश का धनधान्य खींच कर किसी अन्य देश को ले जाने की आकांक्षा न रखते थे।

(२) जहांगीर के दरबार में हाकिन्स और सर टामस रो नामक अँग्रेज राजदूत आये थे, जिन्होंने बादशाह से सूरत में व्यापार करने का फरमान प्राप्त कर लिया था !

बर्नि सक्यो नहिं बर्नियर[1] बसुधा जासु बिसाल,
शाह्जहाँ - सम को भयो शाह जहाँ तेहि काल ? ॥१०॥
जग अनुरूपै आज लौं सप्त कुतूहल - राज,
शाह्जहाँ - जस-ताज - सो अजहुँ चमंकै ताज ! ॥११॥

---

(१) एम० बर्नियर नामक यूरोपीय यात्री शाहजहाँ के शासन-काल में भारत आया था जिसने तत्कालीन मुगल-राज्य के वैभव का वर्णन विशद रूप से किया है।

इस्लाम---(२) पतन के पथ पर !!

प्रबल शक्ति इसलाम की दुर्दमनीय महान,
जाकी प्रतिभा तें भयो कम्पित कबहुँ जहान ! ॥१२॥
चालिस कोटि प्रजान पै जिन के बजे निसान,
सोचनीय है क्यों भये आज वही म्रियमाण ? ॥१३॥

× × × ×

राज्य - लोभ - क्रूरत्व जनु जगहिं दिखावन हेतु;
भ्रातज-भ्रात-निपात करि थाप्यो नवरंग केतु !! ॥१४॥

---

(१) सब से बड़ी सांसारिक स्वार्थ-सिद्धि—राज्य-प्राप्ति—का लोभ संवरण करना औरंगजेब के लिये क्योंकर सम्भव हो सकता था जिसने अपने पिता से ही क्रूरता का पाठ पढ़ा था ! यह राज्य-प्राप्ति का लोभ ही ऐसा होता है, कि इससे विरले (भरत जैसे) व्यक्ति ही उदासीन रह सकते हैं ! वे, जिन में कूटनीतिज्ञता का सर्वथा अभाव हो, और जो भ्रातृत्व और मनुष्यता का पद राज्य-प्राप्ति से भी उच्च समझते हों, आज दुनिया में कितने हैं ? फिर, औरंगजेब तो राज्य लिप्सा के साथ ही साथ मज़हब-परस्ती की मदिरा पीकर तास्सुब के जाल में भी बुरी तरह जकड़ा हुआ था ! उस की दशा तो उस व्यक्ति के समान थी, जिस के लिये गोसांई तुलसी दास जी ने लिखा है:—

ग्रह-ग्रहीत पुनि बात-बस तेहि पुनि बीछी मार !
ताहि पिआइय बारुनी कहहु कौन उपचार ?

सुदृढ़ - समुन्नत ह्वै फरो अकबर के बर बारि,
उखरो मुगल - सुराज-तरु नवरँग - नीति-कुदारि !! ॥१५॥

× × × ×

भयी समुज्वल देश की कीर्ति - कौमुदी मंद !
ग्रसे राहु नवरँग मनहुँ मुगल - राज - बर चंद !! ॥१६॥

× × × ×

होनहार कहिये अरे ! कै दुर्भाग्य महान,
होत सदा इतिहास की कै आवृत्ति जहान-- ॥१७॥

कहिये नवरँग की अहो ! मनोवृत्ति वा भूल,
मुगल-राज नहिं नहिं, नस्यो हिन्दी - राज्य समूल !![1] ॥१८॥

× × × ×

टोडर अर्थ - प्रधान जहँ सेना - नायक मान[2] !!
कौन कहै नहिं देश मैं रह्यो स्वराज्य-विधान ? ॥१९॥

× × × ×

---

(१) लेखक ही नहीं, देश के सब से बड़े सनातनधर्मी नेता महामना मालवीय जी तक यह मानते हैं, (जैसा कि उन्होंने गत वर्ष लाहौर के नागरिकों की एक सभा में कहा था) कि मुग़लों का राज्य शासन हिन्दुस्थानियों का शासन था, जिसे केवल मुसलमानों ही का शासन नहीं कह सकते। क्योंकि, प्रथम तो यह सब के सब शासक भारत को ही अपना 'वतन' समझते थे, और दूसरे, मुगल-राज्य का सञ्चालन तो सर्वथा हिन्दुओं के ही हाथों होता था, जैसा कि मुग़ल-कालीन इतिहास के पढ़ने से आप को विदित होगा।

(२) इतिहास से स्पष्ट है कि अकबर के शासन-काल से लेकर शाहजहाँ के शासन तक बराबर बड़े-बड़े पदों पर हिन्दू अधिकारी

नियुक्त थे। औरंगजेब ने शासन की बागडोर अपने हाथ में लेते ही उन सब को हटा कर केवल तास्सुबी तथा साम्प्रदायिक मुसल्मान अधिकारियों को नियुक्त किया, जिसका कुपरिणाम उसे अपने जीवन-भर लड़ाई झगड़ों के रूप में तो भोगना ही पड़ा, साथ ही उसी के हाथों उस विशाल स्वराज्य साम्राज्य की जड़ें हिल गयीं, और विदेशी शक्तियों को भारत पर अधिकार करने का मार्ग सरल हो गया!

इस्लाम—(३) मज़हब के गर्त में !!!

शाहजहाँ के संग सो मरी अकबरी रीति ![1]
अब आयी साम्राज्य में नवरंगी नव नीति !! ॥२०॥

× × × ×

समता - न्याय - उदारता के शुभ त्यागि बिचार,
होन तअस्सुब सों लगो अब शासन - व्यौहार !! ॥२१॥

---

(१) इन पंक्तियों को पढ़ कर पाठक भूल से भी यह न समझ बैठें कि लेखक अकबर आदि के शासन को आदर्श शासन समझता है। नहीं, उसकी दृष्टि में तो केवल मात्र साम्यवादी शासन प्रणाली ही आदर्श रूप है, बस। क्योंकि सर्वसाधारण जनता—मजदूर-किसानों के अधिकार उसी शासन में सुरक्षित रह सकते हैं। लेखक तो राम-राज्य को भी आदर्श शासन नहीं मानता, क्योंकि उस में भी ऊँच-नीच वैषम्य—के भेद-भाव 'ब्राह्मण' और 'शूद्र' के रूप में भरे पड़े हैं!

हाँ, अकबर का शासन धार्मिक कट्टरता से अवश्य परे था, जिस से तत्कालीन प्रजा-जन अनेक अंशों में सुख-शान्ति का आनन्द उपभोग कर सकते थे। औरंगजेब ने तो उस प्रणाली का ही सर्वथा अंत कर दिया, और योग्यता, शिक्षा, सदाचार अथवा शूरता को महत्व न देकर केवल साम्प्रदायिकता का प्रचार किया! जिस के प्रसाद से आज भी, अखबारी दुनिया में प्रसिद्ध 'बड़े भैय्या' कह सकते हैं—"कैसा ही दुष्ट, दुराग्रही, चोर, शराबी, अथवा व्यभिचारी व्यक्ति हो, यदि वह मुसल्मान है, तो महात्मा गांधी से अच्छा है।" !!!

राज - काज मैं ह्वै चलो पक्षपात सा काम !
'चाहौ शासन मैं सुपद ग्रहण करौ इस्लाम' !! ॥२२॥

राज-नीति - पटु, अनुभवी उच्च पदाधिप भूरि,
केवल 'काफिर' कहि किये राज - काज तें दूरि !! ॥२३॥

शिखा-सूत्र कटवाय, करि बुत - शिकनी प्रारम्भ !
वहुरि नाशकारी कियो 'जजिया' कर आरम्भ !! ॥२४॥

फूलो - फलो स्वराज्य को सुख दायक वर वाग,
चपरो करो पजारी कै नवरँग - नीति -दवाग !! ॥२५॥

वुझी वुझायी फूट की फिर सुलगायी आग !
अथये सौख्य स्वराज्य के उदये दुख - दुरभाग !! ॥२६॥

× × × ×

'दिल्लीश्वर' ही जो रहे 'जगदीश्वर' सम जान,
मुगल - राज - विद्रोह के तिनहूँ हने निशान !![1] ॥२७॥

पारस्परिक अमेल तें ह्वै सुख - शान्ति - विनास,
वहुरि घिरे घर - युद्ध के घन भारत - आकास !! ॥२८॥

---

(१) "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" की उक्ति तत्कालीन जनता की विचार-धारा पर प्रर्याप्त प्रकाश डालती है । और सच पूछिये तो इस्लाम में मज़हबी कटुता की पुट दिये जाने से पूर्व, भारत के ब्राह्मण-धर्म-विशिष्ट जन समुदाय ने उस का उसी रूप में स्वागत किया था, जैसा कि वह अन्य समकालीन विधर्मों (जैन, बौद्ध आदि) का करता आया था । यदि औरंगजेब की कट्टर, तास्सुवी मनोवृत्ति बीच में बाधा न डालती, तो इन सब विभिन्न विचारों के सम्मिलन से निर्मित वर्तमान भारतीय 'धर्म' का स्वरूप बड़ा ही उदार, उन्नत तथा उत्कृष्ट होता !

मिले सुजल - पय प्रेम सों हिन्दू - मुस्लिम भाय,
मज़हब की काँजी परे बहुरि गये बिलगाय !! ॥२९॥

दीख्यो जहँ - तहँ देश मैं राम - राज्य - आभास,
मज़हब की मनु मंथरा कीन्ह्यों बहुरि बिनास !! ॥३०॥

हिन्दू - मुस्लिम बंधु दोउ परे एक रँग चीन्ह,
कटुता की पुट दै मनहुँ नवरँग नवरँग कीन्ह !! ॥३१॥

होत प्रधावित मेल को पोत समुन्नति - राह,
मज़हब के छल छिद्र तें बूड़ो वारि अथाह !! ॥३२॥

रही अधूरी राह, पै पूरी नवरँग - आस !
मज़हब की रक्षा भयी मेल-मिलाप - विनास !! ॥३३॥

मेल दियो, मज़हब लियो महँगो मोल चुकाय !
राज-पाट-धन-धान्य हू दीन्ह्यों तुला चढ़ाय !![1] ॥३४॥

× × × ×

बुनत - उधेरत ही गयी नवरँग - आयु सिराय !
आप बनाये जाल जनु आप गयो लपटाय !![2] ॥३६॥

---

(१) कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय विदेशी बनियें अपनी अपनी तराजू बग़ल में दबाए सतृष्ण नेत्रों से भारत की राज्य-लक्ष्मी को घूरते फिर रहे थे ! औरंगजेबी दरबार की मज़हब-परस्ती तथा उसके द्वारा निकट भविष्य में भड़क उठने वाली गृह-कलह पर ही उन के सुख-स्वप्न की सार्थकता निर्भर थी, और दैवयोग से उनकी वह इच्छा पूरी हुई !

(२) भ्रातृ-विद्रोह का परिणाम सिवाय इसके और हो ही क्या सकता था ? रावण और बालि सरीखे बलवान भी बन्धु-विरोधी बन कर नष्ट-भ्रष्ट होगये ! कौरव-पाण्डवों का सर्वनाश भी इसी भ्रातृ-द्रोही ति के कारण हुआ ! जयचंद ने भ्रातृ-द्रोही बन कर अपने आप को

पश्चात्ताप - प्रलाप मैं बीत्यो अन्तिम काल ![1]
बोवत कबहुँ करील कोउ खाये सुफल रसाल ? ॥४०॥

आह ! न केवल काटि कै नास्यो सुतरु स्वराज,
वैरी वैर - विरोध के बोये बीज अकाज !! ॥४१॥

× × × ×

मजहब के कीटाणु की छायी ऐसी छूत,
अब लौं वैर - विरोध तें भयो न भारत पूत !! ॥४२॥

'विलगाओ, शासन करो'[2] की लहि नीति अनूप,
निष्कंटक शोषण करै कुटिल फिरंगी भूप !! ॥४३॥

ही नहीं, भारत को भी गारत किया ! फिर, औरंगजेब तो भ्रातृ और पितृ-द्रोही ही नहीं, वरन् प्रजा-द्रोही, हिन्दू-द्रोही आदि न जाने कितने "द्रोहों" का सम्मिलित शिकार बना हुआ था !!

(१) "अन्त में सन् १७०६ में बादशाह (औरंगज़ेब) ने अपनी पूरी असफलता देखी ! अब उस की सेना एक असंयत गिरोह मात्र थी, जिसमें विलासिता का जीवन बिताने वाले कट्टर सुन्नी मुसलमानों का बाहुल्य था ! उसका मान-सम्मान बहुत गिरा हुआ था ! राज्य की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी ! औरंगज़ेब का शरीर वृद्धावस्था और चिन्ताओं से ढीला पड़ गया था ! उसका विजय-स्वप्न भंग हो चुका था ! उसके हृदय में भीषण वेदना भरी हुई थी ! बस अब उसके लिये मरने के सिवाय और कुछ नहीं रह गया था !"

—भारत वर्ष का इतिहास।

औरङ्गज़ेब के हृदयमें अपने पूर्वकृत्योंके लिये कैसा भीषण तूफ़ान उठ रहा था, यह उसके उन पत्रों से प्रत्यक्ष हो जाता है, जो उसने दक्षिण-विजय करनेमें पूर्ण असफल होकर अपने पुत्र अकबर को लिखे थे. !

(२) "विलगाओ, शासन करो-'—डिवाइड, एण्ड रूल Divide and rule

मिले मिलाये—एक हू अनामिल भये अकाज !
साँची भयी कबीर की उक्ति अनूपम आज— ॥४

'राम - राम हिन्दू रटैं मुसलमान रहिमान !
आपुस मैं दोउ लरि मुए मरम न काहू जान !!' ॥४

हारैं नेता देश के करि करि नित्य उपाय !
मजहब की खाई न पै पूरत नेकु लखाय !!'॥ ४६

× × × ×

---

(१) कितनी ही ' यूनिटी कान्फ्रेंस' करते रहिये, मेल-मिल के कितने ही नित नये तरीके ईजाद कीजिये, किन्तु जब तब मजह का नामो निशान न मिटाइयेगा, सच्चा मेल-मिलाप कदापि सम्भ नहीं है। चने और मटर, गेहूँ और जौ, ईंटें और कंकड़ कभी आप में मिल नहीं सकते, जब तक वे अपनी मौजूदा (मजहब) सूर और सीरत बदल कर, एक नयी चीज (नेशन)—आटा—न बन जाते।

इन्हीं विचारों को व्यक्त करने वाले निम्नांकित दोहे देखिये:—

अ—हमरे जानत मित्रवर ! है यह व्याधि असाध !
मजहब की, सम्भव नहीं खाई पुरै अगाध !!

ब—औरहि सुगम सुराह कोउ खोजि प्रशस्त उदतार,
चढ़ै समुन्नति - सीस पै बैर - विरोध विसार !

स—प्रातः के बिछुड़े अहा ! साँझहुँ आवैं भौन,
नीतिवान, द्रष्टा, सुधी हम सम जग मैं कौन ?

× × × ×

द—सरल राह या सम नहीं हमरे जान जहान—
　　मजहब की कंथा तजैं लै इक लक्ष्य महान;
य—एक ध्येय उद्देश इक कर्तव एक, न आन—
　　'जेहि तेहि भाँति उठाइयो हिन्दी - हिन्दुस्तान' !

×　　×　　×　　×

अप्रिय सत्य[1]....

जाहिर सकल जहान महँ कौन न जानत आज ?
कछु गायन के हेतु ही दाहिर खोयो राज !![2] ॥४७॥
चूकि चूकि चूक्यो बहुरि पुनि चूक्यो चौहान,
हरे न ग्यारह वार मैं जब गोरी के प्रान !![3] ॥४८॥

---

(१) 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'
अर्थात्—'सत्य बोलु प्रिय बोलु, पै अप्रिय सत्य न बोलु !'

बात बिल्कुल ठीक है, नीतिकारों का यह कथन सर्वथा स्तुत्य है, किन्तु हम अपने भावों का प्रकाशन और किस प्रकार करें ? अस्तु, इस ऐतिहासिक 'अप्रिय सत्य कथन' के लिये' आशा है, नीतिकार हमें क्षमा करेंगे।

(२) अरब के मुसलमान शासकों की ओर से सन् ७१४ ई० में भेजा हुआ मुहम्मद बिनक़ासिम नाम का एक प्रसिद्ध सरदार जब सिंध के तत्कालीन हिन्दू शासक दाहिर से अनेक बार हार कर वापस जाने वाला था, तब किसी देशद्रोही ब्राह्मण (?) ने उसे अपनी सेना के आगे आगे गायों का दल लेकर लड़ने की सलाह दी ! ब्राह्मण देवता की योजना सफल हुई ! राजा और उस के सैनिक कुछ गायों की हत्या होने के भय से तीर न चला सके, और क़ासिम के हाथों परास्त हुए !!

(३) 'पावक बैरी रोग रिन, छोटे गनिये नाहिं' इस नीति का पता था तो पृथ्वीराज को था ही नहीं, अथवा उसने अभिमान-बस

पोषक पोंगापंथ के खड़े रहे बनि ऊद,
सोमनाथ की पूतरी जब तोरी महमूद !![1] ॥४६॥
विश्वनाथ की प्रिय पुरी चढ़ि धायो नवरंग,
भागे शम्भु त्रिशूल लै कूप दुरायो अंग !![2] ॥५०॥

× × × ×

उस की अवहेलना की ! एक दो नहीं, ग्यारह-ग्यारह बार एक प्रबल और दृढ़व्रती शत्रु को अपने पंजे से छोड़ देना, क्या पृथ्वीराज की महान मूर्खता का द्योतक नहीं है ?

(१) कहते हैं, इस मंदिर में हज़ारों पुजारी और गायक तथा हज़ारों ही भक्त—साधुसंत—सर्वदा उपस्थित रहते थे ! फिर इतने मूल्यवान मंदिर की रक्षा लिये पर्याप्त सैनिक भी अवश्य रहते होंगे ! साथ ही महमूद कितनी लम्बी रेगिस्तानी यात्रा करके वहाँ पहुँचा था ! क्या इतने पर भी उसके साथ प्रबल साम्मुख्य न करके, केवल दया-भिक्षा माँगना, हमारी धार्मिक दुर्बलता सिद्ध नहीं करता ?

(२) काशी-यात्रा करने वाले अन्ध विश्वासी भक्त बड़ी श्रद्धा के साथ महादेव की उस मूर्ति का, जो (वहाँ के पंडों के कथनानुसार) औरंगज़ेब के डर से कुएँ में जा छिपी थी, दर्शन करके कृतार्थ होते हैं। आज तक किसी को साहस नहीं हुआ, जो खुले शब्दों में इस कपट व्यापार की कलई खोलते हुए कह सकता, कि जो महादेव एक मनुष्य के भय से भाग कर कुएँ में छिपता है, वह हमारा रक्षक कदापि नहीं हो सकता, और न ऐसे, निर्जीव धर्म को मानने से ही सर्वसाधारण का कल्याण सम्भव है, जिस में ऐसी-ऐसी दुर्बल मनोवृत्तियाँ मौजूद हों ! माना कि देश का शिक्षित समुदाय इन बातों में विशेष विश्वास नहीं रखता, किन्तु देश की सर्वसाधारण जनता की अन्ध श्रद्धालुता की ऐनक छुड़ाना भी क्या हमारा आवश्यकीय कर्तव्य नहीं है ?

उठे मरहटा, खालसा, राजपूत रन ठान,
मुक्त गुलामी तें भये करि करि यत्न महान। ॥६५॥
अनधिकार - चेष्टा लखी किन्तु न विधि तें जाय,
छीनो शासन देश को झट गौरांग पठाय !! ॥६६॥

× × × ×

व्यर्थ करौ या सभ्यता पै अब गर्व - गुमान !
कबहुँ दासता - दुख दुरै करि मिथ्या अभिमान ?॥६७॥
ये हैं पोंगा - पंथ के कछु लक्षण सामान्य !
अब लौं देत स्वराज्य पै आप जिन्हैं प्राधान्य !! ॥६८॥
वाचक ! है वा सभ्यता को यह नंगो चित्र,
जाहि सगर्व सराहि कै कहत अनेकन मित्र—॥६९॥
'मिश्र मिटो, फ़ारस मिटो मिटो अरब - यूनान !
धन्य हमारी सभ्यता ! मिटो न हिन्दुस्तान !!" ॥७०॥
माख न मानहिं मित्र वर ! है यह भोली भूल,
भयो, महा भारत भये वाको नाश समूल !!
दीखहिं चिन्ह अनेक जो हैं वाके कंकाल !
लिये वत्स भूसा - भरो जिमि दोहन को ग्वाल !! ॥७२॥

रूढ़ि राक्षसी—

भारत के नेता चले करन स्वराज्य - विधान,
रूढ़ि राक्षसी ने किये पै पथ - भ्रष्ट महान !! ॥७३॥
रूढ़िवाद को लाभ लै बढ़े विलिङ्डन लार्ड !
बाँधि 'कम्यूनल' - पूँछ मैं लाये एक 'एवार्ड !! ॥७४॥
लगे महात्मा जी मरन करि आमरन उपास !
बचे, त्यागि चिरकाल लौं राजनीति-रन-आस !! ॥७५॥

× × × ×

त्यागि मिकाडो थे प्रथम परदा कौ व्यौहार,
आरम्भ्यो जापान महँ नवशिक्षा - संचार ।[१] ॥७६॥

---

(१) जापान के पहले राजा पर्दे में रहा करते थे ! मिकाडो ने इस रूढ़िवाद का अंत किया। पर्दे से बाहर आकर उन्होंने देश में यूरोप की शिक्षा-नीति का प्रचार किया। सैकड़ों नवजवानों को यूरोप भेज कर वहाँ की शिक्षा-सभ्यता, कला और विज्ञान का अध्ययन कराया। फिर उन्हें जापानी मान-मर्यादा के रँग में रँगकर देश में फैलाया। जिन प्रबल शक्तियों से हमें लोहा लेना है, उन की रीति-नीति भली भाँति जान कर ही हम उन के साम्मुख्य में सफल हो सकते हैं; इस विचार को पूर्वीय देशों में सब से पूर्व जापान ने ही समझा। वह भी अपने यहाँ यदि वही पुरानी दकियानूसी विचार क़ायम रखता, और भगवान बुद्ध की कोरी शिक्षाओं से संतोष लाभ करके—जिस प्रकार हम "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है"...आदि कह कर आगे पीछे देखना नहीं चाहते —न विज्ञान की उन्नति करता, न नये यंत्रों का आविष्कार, तो आज

किये कमाल कमाल हू करि नूतन संस्कार,
सफल समुन्नति मैं भयो रूढ़ि - पहार पजार ॥७७॥
तुर्की अरु जापान की सम्मुख राखि मिसाल,
उद्यत भयो अमान हू उन्नति पै ततकाल । ॥७८॥
रूढ़िवाद को सबल त्यों सरल सहारो पाय,
भिश्ती - नंदन ने दई किश्ती किन्तु डुबाय !![1] ॥७९॥

× × × ×

खोये—गये स्वराज्य को मोल चुकावन हेत,
रूढ़ि - मूढ़ि-मत - वाद की जो सत्वर वलि देत—
नव उन्नति की राह पै सोइ आगे बढ़ि जात,
नतरु पंक पाखंड कौ पोंछत ही मरि जात ![2] ॥८१॥

इस भारतीयों के समान ही विदेशी गुलामी के शिकंजे में जकड़ा होता ! खेद तो यह है, कि हमारे नेताओं ने आज तक इस तथ्य को न समझ पाया, अन्यथा वे देश में पूरे ज़ोर के साथ नव-शिक्षा का सचार करके—निरक्षरता हटा कर—रूढ़िवाद की गुलामी से देश का पीछा छुड़ाते ! क्या जाने उन के ठोस कामों की सूची में कभी इन बातों को भी स्थान मिलेगा या नहीं ?

(१) सर्वसाधारण जनता को भड़काने के लिये रूढ़िवाद ही एक ऐसा भयानक हथियार है, जिसका प्रयोग साधारण प्रतिपक्षी भी अकाट्य रूपसे कर सकता है ! नवोन्नति के मार्ग में द्रुत वेग से प्रधावित अफ़गानिस्तान को बच्चा सक्का जैसे तुच्छ व्यक्तियों ने किस प्रकार पथ-भ्रष्ट किया ? इसी रूढ़ि राक्षसी का सहारा लेकर ! यूरोपीय ढंग पर देश को कला-कौशल और नव-आविष्कारों से सुसज्जित करने का अमानुल्ला का स्वप्न, कोरे कठ मुल्लाओं और जाहिल अफ़ग़ानियों की रूढ़ि-प्रियता के एक ही धक्के में चकनाचूर हो गया !

(२) महात्मा गांधी आदि नेता राजनैतिक काम छोड़कर 'हरिजन-

नव शिक्षा नव सभ्यता को पावन परिधान,
धारत ही उन्नत भये तुर्की अरु जापान ! ॥८२॥

× × × ×

सेवा' के रूप में आज कल क्या कर रहे हैं ? मालवीय और अणे सरीखे दृढ़कर्मी नेता आज किस की मोह-माया में नयी नयी पार्टियाँ बनाते फिरते हैं ? यही रूढ़ि राक्षसी नट-मरकट की नाईं इन सब को नचा रही है ! इसी की सँकायद सकेलने में सब व्यस्त हैं ! अब देखना यह है कि नव-शिक्षा-संचार के बिना यह विधायकवृन्द इस महारोग का कौन सा नव्य निदान निश्चित करते हैं ?

ह्रास के अनन्य कारण—

कारन अमित अनर्थ कौ है केवल अनमेल,
जाके बल विगरैं सदा बने बनाये खेल ! ॥८३॥

× × × ×

नस-नस मैं दीखत भरो हम सब के बहुवाद !
हमरे जान अनेकता है ऊँची मरयाद !! ॥८४॥

बहुमय वातावरन तें अनमिल भये सुभाय !
मिले अनुभवैं दुख सदा सुख समुझैं बिलगाय !! ॥८५॥

× × × ×

बहु आचार, विचार बहु बहु देवी बहु देव !
खानपान - परिधान बहु बहु भाषा बहु भेव !! ॥८६॥

बहु स्वभाव, सिद्धान्त बहु बहु ऋषि-मुनि-अवतार !
पूजा - पाठ - विधान बहु बहु समाज-व्यवहार !! ॥८७॥

बहु इतिहास, पुरान बहु जाति - पाँति बहु पंथ !
बहु त्यौहार, आहार बहु धर्म - कर्म के ग्रंथ !! ॥८८॥

बहु दर्शन, विज्ञान बहु बहुत ईश्वरी ज्ञान !
करहुँ कहाँ लौं बहु कथन हैं बहुतक भगवान !![1] ॥८९॥

× × × ×

---

(१) तैंतीस करोड़ देवता, चौबीस अवतार, ग्यारह रुद्र, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, दुर्गा-काली-चामुण्डा, फिर सब के पृथक पृथक हुए देव,

घेरहिं घन बहुवाद के बहु भारत - आकाश !
कैसे मेल - मिलाप को दिन-कर करै प्रकाश ? ॥९०॥

बहुवादी — अनमेल के भारन भरी समाज !
साधन मेल - मिलाप को एक न दीखै आज !! ॥९१॥

जितने मुँह उतनी परैं बातैं व्यर्थ सुनाय !
सुनत न कोई काहु की अपनी अपनी गाय !! ॥९२॥

'अपनी अपनी डाफली अपनो अपनो राग !'
है अपनो अनुराग - मय पर तें परम विराग !!९३॥

सींचहिं सदा अमेल की बेल एकता खोय !
छाई अमिट अनेकता ऐक्य कहाँ तें होय ? ॥९४॥

अपने अपने हेतु ही दीखैं सबहिं सचेत !
यत्नवान कहँ पाइये सब सब ही के हेत ?' ॥९५॥

×　　　×　　　×　　　×

फिर पीपल-बड़-नदी-नाले-वन-पर्वत, फिर गाय-बैल-बंदर-साँप, फिर सैयद-कब्र-ताज़िये-गाज़ीमियाँ-पीर-पैग़म्बर ! कहिये, अनैक्य की जड़ रोपने के लिये और क्या मसाला चाहते हैं !

(१) कायस्थ कायस्थों के लिये दौड़ता है, तो बनियाँ केवल बनियों की उन्नति के राग अलापता है ! कुछ उन्नत व्यक्ति सनातन धर्म अथवा आर्य्य समाज के नाम पर 'सब की उन्नति' का दम भरते हैं, किन्तु वहाँ भी 'मैं' और 'मेरा' की कर्या कटु रागिनी सुनाई देती है। और नहीं तो कम से कम वहाँ ब्राह्मणों, उपदेशकों, पुरोहितों और आचार्यों का ही सर्वेसर्वात्व विराजमान है, जिसके नक्कारख़ानों में सर्वसाधारण की तूती की आवाज़ कभी सुनाई नहीं दे पाती ! उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति, केवल कथित नाई, बारी, अहीर, चमार आदि

व्यक्तिवाद–बहुवाद– को दानव मारि महान,
सुखशाली जनवाद जब करिहै शक्ति प्रदान—॥१०॥
सरी 'सभ्यता' को जबहिं मिटिहै नाम - निशान,
ह्वै है गलित समाज कौ कायाकल्प - निदान— ॥११॥
सुनहिं पुरातन पंथ की कतहुँ न कोई बात,
नवयुग को तब देश मैं ह्वै है पुण्य प्रभात। ॥१२॥
युवा -कृषक-श्रमकार की तरल त्रिवेनी - तीर,
कोटि-कोटि जन जाति के न्हाय नसैहैं पीर। ॥१३॥

आगामी करुण-प्रकाशन—

बाल-गोपाल

ईसप-नीति-निकुञ्ज

चिनगारी

तमसा

हकीकतराय

गान्धी-गौरव

लवपुर-लावण्य

आदि आदि......

मुद्रक—अमरचन्द्र, राजहंस प्रेस, दिल्ली